Con. 3. IX-5.49
320

अंक 9
संख्या 5

बृहस्पतिवार
4 अगस्त
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 188, नवीन अनुच्छेद 277-क, अनुच्छेद 278, 279, 280, 247, 248, 248-ख तथा 249 पर विचार] 247–311

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 4 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय, (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में हुई।

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*

अनुच्छेद 188, 277-क और 278—*(जारी)*

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्तावित अनुच्छेद 278 के खंड (2) पर अपना मत प्रकट कर रहा था। उसमें ये शब्द हैं—"ऐसी कोई उद्घोषणा किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत या परिवर्तित की जा सकेगी"। श्री कामत ने इसी के समान एक प्रसंग में "परिवर्तित की जा सकेगी" शब्द प्रविष्ट करने के उद्देश्य से एक संशोधन उपस्थित किया था। किन्तु उसे अस्वीकार कर दिया गया था। नवीन अनुच्छेद 275 के खंड 2 (क) में ये शब्द हैं—"किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत की जा सकेगी"। इस सप्ताह की सूची एक के संशोधन संख्या 111 द्वारा श्री कामत इन शब्दों को प्रविष्ट करके उसे संशोधित करना चाहते थे—"किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत अथवा परिवर्तित की जा सकेगी"। वर्तमान अनुच्छेद में इन्हीं शब्दों को अर्थात् "किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत अथवा परिवर्तित की जा सकेगी" शब्दों को अधिकृत रूप से स्वीकार किया गया है। मेरे विचार से समानता इसलिये नहीं आ सकी है कि मसौदा-समिति को शीघ्रता से कार्य करना होता है और विभिन्न निदेशों का अनुसरण करना होता है।

जहां तक प्रस्तावित अनुच्छेद 278 (क) का संबंध है, इसमें खंड (1) के उपखंड (क) और (ख) नवीन हैं। खंड (क) एक नवीन खंड है और खंड (ख) उसका आनुषंगिक खंड हैं। जिस नवीन व्यवस्था को स्थान दिया गया है वह भी क्रांतिकारी है। आपात-संबंधी विधि-निर्माण में प्रांतीय विधान-मंडलों को भी कुछ अधिकार प्रदान करके प्रांतीय-विधान-सभाओं को, मंत्रियों अथवा अन्य लोगों के दोषी होने अथवा निर्दोष होने की परीक्षा करने तथा अपना निर्णय देने का अवसर प्रदान करने के स्थान पर संसद् को उत्तरदायित्व सौंपा गया है। जैसाकि मैंने कल निवेदन किया था, इससे भी केन्द्रीय सरकार तथा संसद् संबंधित राज्य में बदनाम हो जायेंगे। यह हो सकता है कि किसी प्रांत में मंत्री अथवा अन्य लोग कुप्रबन्ध अथवा कुशासन के लिए दोषी हों, किन्तु यदि हम प्रांतीय विधान-सभाओं को उनके संबंध में निर्णय करने का अधिकार नहीं देते हैं तो उस प्रांत के दोषी और निर्दोष, विधि-ध्वंसक और विधि पोषक, सदाचारी तथा दुराचारी सब मिलकर एक हो जायेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि जिन लोगों के दुराचारों के निराकरण के लिए आपात-संबंधी शक्तियों की आवश्यकता है वे जननायक हो जायेंगे, लोग उनकी

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

वीरता की प्रशंसा करेंगे और उनको सबक सिखाने का उद्देश्य निष्फल हो जायेगा। केन्द्र को यह कुख्याति प्राप्त होगी कि वह बिना किसी आवश्यकता के दृष्टतावश उनके घरेलू मामलों में हस्तक्षेप कर रहा है।

श्रीमान्, इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद 278 (क) के खंड (1) के उपखंड (ग) के अधीन राष्ट्रपति से यह आशा की जाती है कि वह संसद् के प्रमुख के नाते आयव्ययक को अधिकृत रूप देगा और उसके लिए मंजूरी देगा। यह प्रांतों और देशी रियासतों के घरेलू आयव्ययकों में हस्तक्षेप करना ही होगा। इसे बहुत नापसन्द किया जायेगा। अच्छा तो यह होता कि राज्यपाल को अथवा राजप्रमुख को कार्य करने दिया जाता तथा अपने आयव्ययकों की व्यवस्था अपनी इच्छानुसार करने की स्वतंत्रता दी जाती। आर्थिक सहायता तो दी जा सकती है किन्तु व्यय की व्यवस्था राष्ट्रपति को सीधे-सीधे न करनी चाहिये।

अब मैं खंड (घ) को उठाता हूं। अनुच्छेद 102 में ये शब्द प्रयुक्त हैं– "उस समय को छोड़कर जबकि संसद् के दोनों सदन सत्र में हैं.....राष्ट्रपति अध्यादेशों का प्रख्यापन कर सकेगा"। विचाराधीन अनुच्छेद का उपखंड अप्रासंगिक है। उसे उस स्थल पर स्थान देना चाहिये जहां अध्यादेशों का वर्णन है। उपखंड (घ) को उस अनुच्छेद समूह में किसी स्थल पर प्रविष्ट करना चाहिये जो अध्यादेशों के संबंध में है और उसे यहां स्थान न देना चाहिये। यह भी जल्दी में मसौदा तैयार करने का परिणाम है।

जो कठिनाइयां पैदा कर दी गई हैं उनमें से कुछ ये हैं। इस समय उनका विस्तृत रूप से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का सबसे गंभीर परिणाम यह होगा कि हम साम्यवादियों की चालों में हाथ बटायेंगे। उनकी चाल यह है कि किसी प्रांत अथवा देशी राज्य में संकटापन्न स्थिति उत्पन्न करके वहां के प्रशासन को अंशतः पंगु कर दें और अधिकारियों को आपात-शक्तियों को प्रयोग करने के लिए बाध्य कर दें। इसके पश्चात् वे इन उग्र शक्तियों के विरुद्ध फैलाने का प्रयास करेंगे और साथ ही दोषी मंत्रियों तथा अधिकारियों को जननायक सिद्ध करेंगे। मैं निवेदन कर चुका हूं कि राज्य का विधान मंडल विचार-विमर्श करने के अधिकार से वंचित हो जायेगा। यदि राष्ट्रपति आपात-शक्तियों के उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लेगा तो मेरे विचार से उसके कार्य के संबंध में राज्यों के विधान-मंडलों में विचार-विमर्श नहीं हो सकता। जब प्रांतों और राज्यों को दोषी लोगों का पता लगाने तथा उन्हें निन्दनीय ठहराने का अधिकार दिया जायेगा तभी वे अपनी आपत्तियों को प्रकट कर सकेंगे किन्तु इस दशा में यह न हो सकेगा। इसका प्रभाव यह होगा कि सभी प्रकार के लोगों का एक ही समुदाय हो जायेगा, चाहे वे अच्छे हों या बुरे, चाहे वे विधि-ध्वंसक हों अथवा विधि-पोषक, केन्द्र बदनाम हो जायेगा और दोषी राज्य शहीद गिने जाने लगेंगे। केन्द्र की उपेक्षा की जायेगी और वह अधिकाधिक आपात शक्तियों को प्रयोग करने के लिए विवश होगा और एक अकाट्य दूषित चक्र में फंस जायेगा। इससे राज्यों में असंतोष बढ़ने लगेगा और उनकी विघटनकारी प्रवृत्तियां प्रबल होने लगेंगी और केन्द्र की लोक सभा के सामान्य निर्वाचनों में उनकी छाया पड़ेगी। इसका

परिणाम यह होगा कि जो उग्र शक्तियां केन्द्र को सशक्त बनाने के लिए उसे प्रदान की जा रही हैं वे ही कुछ समय पश्चात् उसे अशक्त बना देंगी। मुझे यह डर है, और मैं यह काफी विचार करने के बाद कह रहा हूं, कि हम धीरे-धीरे, सम्भवत: अनजाने, स्वेच्छाचारी शासन की ओर बढ़ रहे हैं। यह एक अजीब बात है कि यद्यपि स्वेच्छाचारी शासक हमेशा कुख्यात रहे हैं और अंत में विध्वंसकारी ही सिद्ध हुये हैं किन्तु आधुनिक काल में भी वे समुन्नत होते ही हैं। सुव्यवस्थित लोकतंत्र में ही उनका जन्म होता है। देखा जाये तो शीघ्र प्रभावी संविधानिक उपचारों से विधि-विहीनता को ईमानदारी से समाप्त करने की इच्छा के फलस्वरूप ही उनका जन्म होता है। इन आपात-शक्तियों के संकेन्द्रण के पीछे साम्यवादियों का भय ही है। हिटलर ने भी इसी कारण स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया था। वास्तव में वह जर्मनी से साम्यवादियों को निकाल बाहर करना चाहता था। विधान-मंडल का तथा लोकमत का सफलतापूर्वक दमन करने के पश्चात् हिटलर ने युद्ध के लिये एक बहुत बड़ा संगठन तैयार किया और उसके पश्चात् अपने राज्यक्षेत्र का प्रसार करने की ठानी। इससे पिछला युद्ध हुआ और हिटलर का पतन हो गया मसोलिनी ने भी इसी प्रकार स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया और उसकी भी वही गति हुई मुझे आशा है कि हम उस लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ रहे हैं। किन्तु मुझे यह संदेह है कि आधुनिक काल में स्वेच्छाचारी शासकों ने अपने देशों के हित साधन के लिए, सम्भवत: अनजाने, जो कदम उठाये हैं उनका हम भी अनजाने में अनुसरण कर रहे हैं और स्वेच्छाचारी शासन की ओर बढ़ रहे हैं। सभा में कुछ लोगों की विशेषतया युवा सदस्यों की, यह धारणा है कि भारत में किसी न किसी प्रकार के स्वेच्छाचारी शासन की बहुत आवश्यकता है। मेरा यह निवेदन है कि इस प्रकार की धारणा का होना स्वाभाविक ही है किन्तु मैं यह कहना चाहता हूं कि स्वेच्छाचारी शासन निष्फल ही होते हैं और उनकी एक ही गति होती है। वास्तव में वे एक दूषित चक्र में फंस जाते हैं। स्वेच्छाचारी शासन की आवश्यकता होती है। गुप्त रूप से विरोध बढ़ता रहता है और अन्त में इतना प्रबल हो जाता है कि जिस शक्ति ने उसे जन्म दिया था उसे ही समाप्त कर देता है। सुव्यवस्था लोकतंत्रात्मक शक्तियों के विकसित होने पर ही स्थापित हो सकती है। यह सभी को विदित है, और सभा में भी सभी जानते हैं, कि समाचार पत्रों को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है और पत्रकारों की यह धारणा है कि वे ऐसे तथ्यों को स्वतंत्रता से नहीं प्रकाशित कर सकते जिनसे सरकार के दृष्टिकोण का खंडन होता हो, अथवा सरकार लोगों की नजर में गिर जाती हो मेरे विचार से ये अच्छे लक्षण नहीं हैं। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि इस अनुच्छेद माला से हानिकारी विरोध की वृद्धि होगी। मुझे आशा है कि प्रत्येक विधि पोषक नागरिक तथा संविधान में तथा लोकतन्त्र प्रणाली में निष्ठा रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस प्रवृत्ति का विरोध करने के लिए आगे बढ़ेगा। वास्तव में शक्ति की अवाप्ति तथा उसका संकेन्द्रण एक गहरी बीमारी के द्योतक हैं। मैं निवेदन कर चुका हूं कि इसका प्रतिफल उन्हीं लोगों को भोगना पड़ेगा जो स्वेच्छाचारी शासन के इच्छुक हैं। लोकमत की स्वतंत्र अभिव्यंजना से ही सभी का हित साधन हो सकता है। इस समय की स्थिति इसी का परिणाम है कि देश में, अर्थात् राज्यों में तथा प्रांतों में और केन्द्र में एक नियमित और सुसंगठित विपक्षी दल का अभाव है। देश में अनियमित तथा असंगठित रूप से विरोध होता है और उसे प्रकट होने के यथोचित साधन प्राप्त

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

न होने से वह बृहत् पैमाने में असंतोष तथा विधि-खंडन की प्रवृत्ति के रूप में अभिव्यक्त होता है। वास्तव में दमन के कारण बराबर विधि का खंडन करने वालों तथा ईमानदार नागरिकों का एक ही समूह हो जाता है। यदि मेरी चेतावनी निराधार प्रमाणित हुई तो मुझसे अधिक प्रसन्नता और किसी को न होगी। किन्तु मुझे यह भय है कि हम स्वेच्छाचारी शासन की ओर बढ़ रहे हैं और हमारी भी वही गति होने की संभावना है जो पहले दो स्वेच्छाचारी शासनों की हो चुकी है।

***अध्यक्ष:** पंडित ठाकुरदास भार्गव: मुझे आशा है कि सदस्य घड़ी को देखते रहेंगे। हम इस अनुच्छेद पर चार घंटे पच्चीस मिनट विचार कर चुके हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल) : श्रीमान्, संविधान में आपात शक्तियों के संबंध में जो उपबन्ध हैं वे वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण हैं और मैं सभा का कुछ समय केवल इस कारण लेना चाहता हूं कि इस प्रश्न को बड़ी योग्यता से तथा कुशलता से हल करने के लिए मसौदा-समिति को बधाई देने की आवश्यकता है। श्रीमान्, मसौदा-समिति के प्रस्तावों की आलोचना करना बहुत सरल है। यदि मसौदा-समिति अनुच्छेद 188 को पहले के ही रूप में रहने देती तो मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि जो लोग इस समय आलोचना कर रहे हैं वे उसे उस रूप में रहने की भी कड़ी भाषा में आलोचना करते। हमें केवल यह देखना है कि लाभों और अलाभों को ध्यान में रखते हुए इस समय की स्थिति पहले से अच्छी है या नहीं। इस दृष्टि से मेरा यह नम्र निवेदन है कि यदि हम अनुच्छेद 188 को बनाये रखते तो हम बहुत बड़ी गलती करते। अनुच्छेद 188 को निकालने और उसके स्थान में अनुच्छेद 278 और 277 (क) को रखने का अर्थ यह होगा कि राज्यपाल को कोई भी आपात-शक्तियां प्राप्त न होंगी। अब एक व्यक्ति, अर्थात् राज्यपाल, स्वविवेक से कार्य करके राज्य के भाग्य का निर्णय नहीं करेगा। यह अधिकार पूरे मंत्रिमंडल को दिया गया है और अब इसका भय नहीं रह गया है कि केवल भयग्रस्त होने के कारण अथवा किसी मंत्रिमंडल से अथवा अन्य लोगों से व्यक्तिगत विद्वेष होने के कारण आपात-शक्तियों का प्रयोग न किया जायेगा। इसके विपरीत, हमें विश्वास है कि राष्ट्रपति पूरे मंत्रिमंडल की सहायता तथा मंत्रणा से कठिन से कठिन प्रश्नों को हल कर लेगा।

इसके अतिरिक्त मुझे इसकी प्रसन्नता है कि अनुच्छेद 277 (क) को संविधान में स्थान दिया जा रहा है। इसके न रहने से संविधान में एक बहुत बड़ी कमी रह जाती। यह मेरी समझ में नहीं आता कि केन्द्र की शक्तियों से कोई भी संबंध न रखकर प्रांतीय स्वायत्त-शासन को किस प्रकार एक पृथक श्रेणी में रखा जा सकता है। हम मूलाधिकारों तथा उच्चतम-न्यायालय की शक्तियों के संबंध में उपबन्ध रख चुके हैं। हम यह जानते हैं कि सेना तथा नौसेना केन्द्र के अधिकार में हैं। इस दशा में प्रांतीय स्वायत-शासन असम्बद्ध कैसे रह सकता है और राज्यों को स्वतंत्र अधिकार कैसे प्राप्त हो सकते हैं? यदि थोड़ी देर के लिए हम यह मानें कि कभी संविधान अप्रभावी भी हो सकता है तो उस दशा में कोई राज्य लोगों को मूलाधिकारों के प्रयोग के संबंध में प्रत्याभूमि कैसे देगा? उसके लिये यह एक असंभव बात होगी। यह तर्क स्वखंडनकारी है। जब देश को सेना और अन्य शक्तियों की आवश्यकता होगी तो कोई प्रांत स्थिति को अकेले कैसे सम्हालेगा? इसलिये प्रांतीय स्वायत्त-शासन के संबंध में भी हमें यह समझ लेना चाहिये कि

उसके प्रति केन्द्र को एक बहुत बड़े कर्त्तव्य का निर्वहन करना है। मेरी केवल एक शिकायत है और वह यह है कि अनुच्छेद 277(क) को स्थान देकर हम केवल अपनी सम्भावना को व्यक्त कर रहे हैं। मेरी यह इच्छा थी और मैंने इस उद्देश्य से एक संशोधन भी उपस्थित किया था कि तर्कसंगत बात यही है कि हम इस आशय के एक उपबन्ध को स्थान दें कि अनुच्छेद 277(क) से उद्भूत कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिये जो प्रकार्य आवश्यक हों उन्हें पूरा करने के लिए केन्द्रीय सरकार जो कदम उठाना चाहे उठाये। ऐसी स्थिति के उत्पन्न होने पर भी, जब संविधान अप्रभावी न हुआ हो किन्तु उसके अप्रभावी होने की आशंका हो, केन्द्र को अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करना होगा और इसलिये उसे यथेष्ट शक्तियां प्राप्त होनी चाहियें। केवल यह कहना पर्याप्त नहीं है कि यह केन्द्र का कर्त्तव्य है कि वह संविधान को प्रयोग में लाये। जब केन्द्र को किसी कर्त्तव्य का पालन करना है तो स्थिति के अनुसार उसके पालन के लिए उसे पर्याप्त साधन भी प्राप्त होने चाहियें। इसलिए मैं यह चाहता हूं कि संविधान भले ही अप्रभावी न हुआ हो किन्तु फिर भी केन्द्र को यथेष्ट शक्तियां प्राप्त होनी चाहियें।

मैं इसे स्वीकार करता हूं कि अनुच्छेद 278 और 277 (क) के संबंध में कुछ आलोचना की गई है। पहली आलोचना, जिसके संबंध में मैं बोलना चाहता हूं, "अन्यथा" शब्द के बारे में है। जब यह घोषित किया गया था कि राज्यपालों का निर्वाचन न होगा और वे केन्द्र द्वारा नियुक्त होंगे तो इस संबंध में आपत्ति की गई थी। यह आपत्ति की गई थी कि यह एक प्रतिगामी कदम है। अब जो लोग इस अनुच्छेद का विरोध कर रहे हैं, वे यह कहते हैं कि केवल राज्यपाल के प्रतिवेदन पर ही विचार किया जाना चाहिये, यदि राज्यपाल स्वतंत्र न होगा, और केन्द्रीय सरकार की ओर से ही कार्य करेगा, तो उसके प्रतिवेदन का मूल्य ही क्या होगा? जब आप इसे स्वीकार करते हैं कि राज्यपाल की केवल व्यक्तिगत हैसियत है और वह प्रांत के लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करता तो आप उसके प्रतिवेदन का विश्वास कैसे कर सकते हैं? "प्रतिवेदन पर अथवा यदि" शब्दों से यही प्रकट होता है कि या तो राज्यपाल अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर रहा है या उसने गलत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है। यदि राज्यपाल और मंत्रियों के बीच कलह हुआ और मंत्रियों ने तथा सदनों ने यह संकल्प पारित किया कि एक षड़यंत्र रचा जा रहा है और राज्य में कलह है तथा केन्द्र को हस्तक्षेप करना चाहिये, तो क्या होगा? इस स्थिति में यह उचित है कि "अथवा यदि" शब्द रहने दिये जायें। उसने इस प्रकार की आकस्मिकताओं के लिए व्यवस्था हो जाती है। आखिर केन्द्र को अथवा राष्ट्रपति को स्थिति का निराकरण करना ही होगा और संविधान के अप्रभावी होने पर स्थिति को इतनी न बिगड़ने देना होगा कि अराजकता फैल जाये। यदि यह तर्क ठीक है तो चाहे राष्ट्रपति को अथवा केन्द्र को जैसे भी सूचना प्राप्त हो, केन्द्र का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हस्तक्षेप करे। इसलिये "अथवा यदि" शब्दों का यह अर्थ नहीं है, जैसाकि मेरे एक मित्र ने कहा था, कि गुप्तचर विभाग की सूचना पर्याप्त समझी जायेगी। यह और भी गम्भीर बात होगी। राष्ट्रपति अथवा मंत्रिमंडल इतने अनुत्तरदायी और मनमाने ढंग से कैसे कदम उठायेंगे? उन मित्रों की आपत्ति मेरी समझ में आती है। जिन्होंने कहा है कि अनुच्छेद 278 के ये शब्द बहुत व्यापक हैं। वे अवश्य व्यापक हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि कोई अनुत्तरदायी राष्ट्रपति अथवा मंत्रिमंडल मनमाने ढंग से कार्य कर सकते हैं। संगठन कैसे असफल हो जायेगा यही सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। यदि संविधानिक तंत्र सुचारू

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

रूप से कार्य नहीं करता है, अर्थात् केवल 2 प्रतिशत सुचारू रूप से कार्य करता है और 98 प्रतिशत दूषित रूप से कार्य करता हैं, अथवा 98 प्रतिशत सुचारू रूप से कार्य करता है और 2 प्रतिशत दूषित रूप से कार्य करता है, तो प्रश्न यह है कि यदि थोड़े से अंश के संबंध में गतिरोध हो जाये तो क्या यह कहा जा सकता है कि संविधान उस प्रकार प्रयोग में नहीं आ रहा है जैसे उसे आना चाहिये? किन्तु मेरे विचार से कोई व्यक्ति यह न कहेगा कि ऐसी स्थिति में केन्द्र उत्तरदायित्व का स्वयं निर्वहन करे क्योंकि इस स्थिति में उत्तरदायित्व का निर्वहन करना बहुत कठिन होगा। आखिर कोई भी केन्द्रीय सरकार यह न चाहेगी कि केन्द्र और किसी राज्य के बीच कलह हो। हम यह क्यों मान लें कि मंत्रिमंडल मनमाने ढंग से गलत कार्यवाही करेगा? मेरे विचार से कोई भी उपबन्ध ऐसा नहीं हो सकता जिसमें दोष नहीं निकाला जा सकता। स्थिति तभी बिगड़ेगी तब संविधान को ईमानदारी तथा सद्भावना से प्रयोग में न लाया जायेगा। अन्यथा किसी भी संविधान में कोई ऐसा उपबन्ध नहीं है जिसका दुरुपयोग नहीं हो सकता। हम यह क्यों मान लें कि इसका दुरुपयोग होगा? आखिर इसमें अन्तर ही क्या है? यदि केन्द्र को भी कार्य करना होगा तो आखिर वह कैसे कार्य करेगा? क्या इसका अर्थ यह है कि अव्यवस्था हो जायेगी? यह बात नहीं होगी। यदि किसी प्रांत के प्रशासन की केन्द्र भी अपने हाथ में ले लेगा तो वहां का शासन तंत्र बेकार न हो जायेगा। केन्द्र वहां पहिले से भिन्न प्रशासन के उद्देश्य से हजारों लोगों को नहीं भेजेगा। हम इसकी कल्पना कर सकते हैं कि इस प्रकार की स्थिति में क्या होगा। भारत में कई प्रांतों में बहुत काल से लोक-तंत्रात्मक शासन व्यवस्था रही है। कई राज्यों में अब लोकतंत्रात्मक संस्थाएं स्थापित की जा रही हैं। शताब्दियों से वहां सामान्तवादी प्रणाली प्रयोग में रही है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि जब तक आप इस प्रकार के उपबन्ध को स्थान न देंगे, केन्द्र अपने कर्तव्य के पालन में समर्थ न होगा। केन्द्र का यह कर्त्तव्य है कि वह इसकी चिंता करे कि संविधान यथोचित रूप से प्रवर्तन में आये।

मुझे यह विदित है कि यह आलोचना की गई है कि अनुच्छेद 277(क) और 278 से राज्यों की शक्तियों का अपहरण होता है और उन्हें अधीनता स्वीकार करनी होती है। कुछ आलोचकों ने तो वास्तव में यह कहा है कि प्रांतीय स्वायत्त शासन हास्यास्पद ही प्रमाणित होगा और इस प्रकार की परिस्थिति में प्रांतीय राज्यपाल जो कार्यवाही कर सकता उसे केन्द्रीय सरकार न कर सकेगी। किन्तु बात यह नहीं है। यह दिखाई देता है कि ये आलोचक यह नहीं समझ पाये हैं कि कोई भी संविधान तब तक अप्रभावी नहीं कहा जा सकता जब तक कि राज्य संबंधी सभी उपबन्ध निष्फल न हो गये हों। मेरी राय में ऐसी स्थिति के उत्पन्न होने पर राज्यपाल अपने कर्त्तव्यपालन के हेतु सबसे पहले विधान-मंडल का विघटन कर देगा। जब तक कि सभी प्रकार के प्रयत्न न किये जा चुके हों, और जब तक कि राज्यपाल को यह विश्वास न हो जाये कि लोग साधारण स्वतंत्राओं का भी उपभोग नहीं कर सकते हैं, तब तक वह यह निर्णय न करेगा कि संविधान अप्रभावी हो चुका है। मैं ऐसी स्थिति की कल्पना नहीं कर सकता जिसमें राज्यपाल विधि द्वारा प्रदत्त अपनी शक्तियों को इस प्रकार प्रयोग न करेगा जिससे संविधान प्रवर्तनशील रहे। जब पूरा संविधान ही अप्रभावी हो जायेगा तो अराजकता ही फैल जायेगी। ऐसी

स्थिति में क्या किया जाना चाहिये? मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने कहा है कि ऐसी स्थिति में पूरे प्रशासन की बागडोर केन्द्र के अपने हाथ में ले लेने से ही अराजकता फैल जायेगी। किन्तु मैं यह कहता हूं कि अराजकता को रोकने के लिए ही केन्द्र प्रशासन को अपने हाथ में लेगा। क्या संविधानिक तंत्र के गतिशून्य हो जाने पर जो अराजकता फैल जायेगी उसे हम जारी रहने देंगे? मुझे विश्वास है कि इसे हर कोई स्वीकार करेगा कि अच्छा यही होगा कि केन्द्र हस्तक्षेप करे और प्रशासन को अपने हाथ में ले ले।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, मुझे एक सूचना प्राप्त करनी है। क्या मैं माननीय सदस्य महोदय से पूछ सकता हूं कि जिन अनुच्छेदों को हम स्वीकार कर चुके हैं उनमें आपस की स्थिति में राज्यपाल द्वारा विधान-मंडल के विघटन के संबंध में किस स्थल पर उपबन्ध है?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** क्या मैं अपने माननीय मित्र से यह प्रति प्रश्न पूछ सकता हूं कि इस संबंध में किस स्थल पर उपबन्ध है कि राज्यपाल अनुच्छेद 153 के अधीन कार्य न करेगा? मैं यह समझता हूं कि संविधान का आशय यह है कि राज्यपाल ऐसी स्थिति में स्वविवेक से कार्य करेगा और जब वह यह समझेगा कि स्थिति ऐसी हो गई है कि विधान-मंडल का विघटन आवश्यक हो गया है तो वह अपने कर्त्तव्य के पालन के हेतु इस कदम को उठायेगा। केन्द्रीय सरकार भी स्थिति पर विचार करेगी और राज्य के प्रशासन को जल्दी अपने हाथ में न ले लेगी क्योंकि उसे चलाना बहुत कठिन होगा। आप यह क्यों सोचते हैं कि राज्यपाल कार्य नहीं करेगा? मुझसे प्रश्न पूछने के पूर्व मेरे मित्र को इस प्रश्न का उत्तर देना है।

अब हम इस प्रकार की स्थिति पर विचार करें। यदि किसी राज्य में संविधानिक तंत्र केवल दो मास के लिए गतिशून्य हो जाये तो मंत्रिमंडल को पूरे प्रशासन को अपने हाथ में ले लेने का अधिकार होगा। इन दो मास में केन्द्र को क्या लाभ होगा? संसद् इसका निर्णय करेगी कि मंत्रीमंडल ने यथोचित कार्य किया है या नहीं? यदि संसद उस कार्य का समर्थन करती है तो उसका यह अर्थ होगा कि उस राज्य के प्रतिनिधियों ने तथा अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों ने मंत्रिमंडल के कार्य का समर्थन किया है। मेरी समझ में नहीं आता कि इस पर क्या आपत्ति की जा सकती है। इसके अतिरिक्त बहुत से रक्षाकवच भी हैं। पहले तो दो मास का प्रश्न है और फिर यह प्रश्न है कि मंत्रि-मंडल उस स्थिति के संबंध में क्या निर्णय करता है। इसके अतिरिक्त 6 मास की अवधि के संबंध में भी उपबन्ध है। ये सब निस्संदेह बहुत सुन्दर रक्षा-कवच हैं ओर मेरी समक्ष में नहीं आता कि आलोचक इस अनुच्छेद के संबंध में बेईमानी और अपराध का पोषक आदि शब्दावली के प्रयोग कैसे कर रहे हैं। मेरा यह नम्र निवेदन है कि भारत की वर्तमान विकासपूर्ण स्थिति में जब देश में इतनी विघटनकारी प्रवृतियां दिखाई दे रही हैं, मसौदा-समिति ने इस उपबन्ध को स्थान देकर एक उपयुक्त कदम उठाया है। इससे देश की एकता सुदृढ़ हो सकेगी। इससे केन्द्र का यह दायित्व हो जाता है कि वह इसकी देख रेख करे कि प्रांत अपने प्रशासन को कुशलता से तथा संविधान के अनुसार चला रहे हैं या नहीं।

यह तर्क उपस्थित किया गया है कि अनुच्छेद 275 से हमारा उद्देश्य पूरा हो जाता है और अनुच्छेद 278 जैसे उपबन्ध को स्थान देने की कोई आवश्यकता नहीं है

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि अनुच्छेद 278 के अधीन शांति, प्रशांति तथा आभ्यन्तरिक अशांति का कोई प्रश्न नहीं उठता। क्या मैं यह बता सकता हूं कि यह स्थिति ऐसी है जब पूरा तंत्र गतिशून्य हो जायेगा और साधारण लोगों की सामान्य स्वतंत्रताओं का अपहरण हो जायेगा? आभ्यन्तरिक अशांति आदि की स्थिति इसके अन्तर्गत आ जाती है। यह भी हो सकता है कि आभ्यन्तरिक अशांति न हो किन्तु शांति तथा प्रशांति के लोगों द्वारा भंग होने का भय उपस्थित हो। इस स्थिति में मेरे विचार से राज्य यह नहीं कह सकता है कि विद्रोह तथा आभ्यन्तरिक अशांति नहीं है। विद्रोह हो जाने के पश्चात् उसका दमन करने से पहले ही उसकी रोकथाम करना कहीं अच्छा होगा। इन कारणों से, मेरे विचार से अनुच्छेद 277(क) और अनुच्छेद 278 को अवश्य स्थान दिया जाना चाहिये। मेरी केवल यह इच्छा है कि अनुच्छेद 277(क) से जो तर्क संगत परिणाम निकलता है उसे भी संविधान में स्थान दिया जाना चाहिये अर्थात् संविधानिक तंत्र के गतिशून्य होने के पूर्व ही उसे इस स्थिति से बचाने के हेतु केन्द्र को अपने कर्त्तव्य-पालन में समर्थ बनाने के लिए अधिक शक्ति प्रदान की जानी चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 278 को जिस रूप में उपस्थित किया है उसका मैं समर्थन करता हूं। किन्तु इस अनुच्छेद के कुछ उपबन्धों के संबंध में मुझे कुछ आपत्ति है और मैं उसे प्रकट करूंगा। मैं इस उपबन्ध के पक्ष में नहीं हूं कि संसद् के सहमत होने पर ही राष्ट्रपति होने पर ही राष्ट्रपति राज्य की ओर से विधायिनी शक्तियों का प्रयोग करे। मैं दो कारणों से इससे असहमत हूं। पहले तो इससे बिलम्ब होगा। यदि राष्ट्रपति किसी विधि को तुरन्त पारित कराना चाहेगा तो यह उपबन्ध उसके मार्ग में बाधक सिद्ध होगा क्योंकि संसद् में उस विधि के पारित होने में समय लगेगा। विचाराधीन स्थिति में समय का ही सबसे अधिक महत्व रहेगा। आपात की दशा में राष्ट्रपति को तेजी से कार्य करने की क्षमता प्राप्त होनी चाहिये। यदि उसकी विधायिनी शक्ति के मार्ग में इस प्रकार बाधा डाल दी गई तो इससे कठिनाई ही उत्पन्न होगी। इसके अतिरिक्त मैं एक और कारण से भी इसके विरुद्ध हूं। उस स्थिति की कल्पना कीजिये जब संसद् मंजूरी न दे। यदि उस स्थिति में राष्ट्रपति किसी विधि की आवश्यकता समझे, और संसद् उसे पारित न करे, तो क्या होगा? कठिनाई उठ खड़ी होगी। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि राष्ट्रपति को पूर्ण विधायिनी शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। यदि कोई गंभीर आपात उपस्थित हो गया हो, और किसी प्रांत में विधि और व्यवस्था का तंत्र नष्ट हो गया हो, तो उस दशा में राष्ट्रपति को पूर्ण विधायिनी शक्ति प्राप्त हो जानी चाहिये। उसे कार्यपालिका शक्ति इस समय भी प्राप्त है। मेरे विचार से यदि थोड़े काल के लिए राष्ट्रपति को विधायिनी शक्ति भी प्रदान कर दी जाये तो इससे देश को अथवा संविधान को कोई हानि न होगी।

श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद के इस उपबंध के भी विरूद्ध हूं कि आपात-काल में उच्च-न्यायालय की शक्तियां तथा उसके प्रकार्य निराकृत न होंगे। मैं इसका कारण जानना चाहता हूं। क्या आप अपने राष्ट्रपति का विश्वास नहीं करते हैं? क्या आप यह समझते हैं कि कुछ राजनैतिक विचारों से बदला चुकाने के लिए यह अत्याचार करेगा? आपात-काल में राष्ट्रपति की पूरी शक्ति तथा सरकार व मंत्रि-परिषद् का

ध्यान, इसी लक्ष्य पर संकेन्द्रित रहेगा कि विधि और व्यवस्था की रक्षा किस प्रकार की जाये और देश के आपद्गस्त भागों में किस प्रकार शांति स्थापित की जाये। श्रीमान्, कुछ मास पूर्व सभा में इस प्रश्न पर गरम बहस हुई थी कि संविधान में 'यथोचित विधिप्रक्रिया' शब्द समाविष्ट होने चाहियें या नहीं। हमने यह अनुभव किया कि इन शब्दों से कार्यपालिका के हाथ बंध जायेंगे और इसलिये हमने इन शब्दों को अस्वीकार कर दिया। देश में गम्भीर आपात उपस्थित होने का भय केवल काल्पनिक नहीं, वास्तविक है। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या राष्ट्रपति, यह अनुभव करने पर कि नागरिकों के कुछ मूलाधिकारों के निराकरण की आवश्यकता है, बिना उनका निराकरण किये हुए संकट के निवारण के हेतु अपने प्रकार्यों का पालन कर सकता है? हम थोड़े ही काल के लिए इन शक्तियों को राष्ट्रपति को प्रदान करना चाहते हैं। यह उपबन्ध हमेशा प्रवर्तन में नहीं रहेगा। इसलिये मेरी यह धारणा है कि यदि राष्ट्रपति इसकी आवश्यकता समझे तो उच्च-न्यायालय की शक्तियों का निराकरण हो जाना चाहिये। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जैसे की अनुच्छेद 278 प्रयोग में आयेगा, उच्च-न्यायालय की सभी शक्तियों का निराकरण हो जायेगा। मैं केवल यह चाहता हूं कि यदि राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि बिना नागरिकों के कुछ मूलाधिकारों का निराकरण किये हुये संकट से मुक्ति नहीं मिल सकती है तो उसे इसके लिये शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। इस प्रकार का उपबन्ध तर्कसंगत होगा। मैं यह अनुभव करता हूं कि यदि राज्य की सुरक्षा और किसी व्यक्ति के स्वीय स्वातंत्र्य में विरोध हो तो, मेरी यह इच्छा है कि राज्य की सुरक्षा की ही सुनिश्चित करना चाहिये और उसी पर जोर देना चाहिये। घटनाओं से परिपूर्ण भारत के इतिहास में हम पहली बार अपना स्वाधीन राज्य स्थापित कर सके हैं। क्या हम उसे कुछ ऐसी नवीन विचार धाराओं के पोषण के हेतु खो देना चाहते हैं जो अपने उद्‌भव-स्थानों में ही खंडित हो चुकी हैं? निस्संदेह सबसे अच्छी बात तो यह है कि राज्य की सुरक्षा भी बनी रहे और लोगों का स्वीय स्वातंत्र्य भी। किन्तु आदर्श तक पहुंचना हमेशा संभव नहीं होता है और इसलिये यदि कभी इन दोनों में विरोध हो तो मेरे मित्रों को किसी एक को श्रेष्ठ समझना होगा। मैं राज्य की सुरक्षा को श्रेष्ठ समझता हूं।

अनुच्छेद 278 से यह आशय भी प्रकट होता है कि दुराचार का सदाचार से और विधि विहीनता का विधि से निराकरण किया जाना चाहिये। देश में लोकतंत्र विरुद्ध शक्तियों का सामना करने के लिए राष्ट्रपति को लोकतंत्र की शक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। यह इस कथन के समान है कि दुराचार की शक्तियों का निराकरण अहिंसा तथा सदाचार से होना चाहिये। किन्तु व्यवहार कुशल राजनीतिज्ञ तथा विधि-निर्माता इस सिद्धांत को आसानी से स्वीकार न करेंगे।

मैं उस उपबन्ध के पक्ष में भी नहीं हूं जिसका आशय यह है कि आपात की अवधि तीन वर्ष से अधिक न होगी। यह कथन सम्राट कैन्यूट के लहरों से यह कहने के समान है कि ऐलहरो राज पदों का स्पर्शमत करो। आप यह पहले ही से कैसे कह सकते हैं कि आपात की अवधि तीन वर्ष से अधिक न होगी? देश में अशांति और विधि विहीनता की शक्तियां प्रबल हो रही हैं और तेजी से प्रभावी ही रही हैं। हम यह नहीं चाहते कि इस उपबन्ध की आड़ में तमाम तरह के काम होते रहें। मैं अपने माननीय मित्रों से यह अनुरोध करता हूं कि जिस संकट की ओर श्री कामत ने ध्यान दिलाया है उस पर वे ठंडे दिल से विचार करें। वह यह है कि देश में स्वेच्छाचारी शासन स्थापित होने का संकट। मेरा यह

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

कहना है कि जिस संविधान का हम निर्माण कर रहे हैं उस पर देश के लोकतंत्र की सफलता निर्भर नहीं है उसका संबंध आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था से है। जब तक हम अपनी आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था में सुधार न करेंगे तब तक केवल लोकतंत्रात्क संविधान से हमारी रक्षा नहीं हो सकती।

श्रीमान्, हमें यह बताया गया है कि बीमार का संविधान अपने कुछ उपबन्धों के कारण ही नष्ट हो गया है। मैं यह नहीं मानता। यह एक आश्चर्य की बात है कि श्री कामत जैसे विद्वान पुरुष ने ऐसा थोथा तर्क उपस्थित किया। हिटलरवाद किसी अनुच्छेद के कारण प्रबल नहीं हुआ। चाहे कोई अनुच्छेद रहता या न रहता, उसे प्रबल होना ही था। जर्मनी की प्रथम महायुद्ध में हार होने के कारण ही हिटलरवाद का उदय हुआ। मुझे इस संबंध में संदेह है कि जर्मनी में लोकतंत्र सफल हो सकता है या नहीं। प्रण की युद्ध तथा विजय परम्परा जर्मनी की भूमि में ऐसी जड़ पकड़े हुए है कि वह किसी लोकतंत्रात्मक संविधान को पनपने ही नहीं देती।

श्रीमान्, मुझ पर यह आरोप लगाया गया है कि मुझे संविधानिक औचित्य का कोई ध्यान नहीं रहता। राजनैतिक विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते मुझे इस देश के कुछ सुयोग्य अध्यापकों से संसार के सभी संविधानों को पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि राजनीति में कोई ऐसे आधारभूत नियम अथवा सनातन सिद्धांत नहीं हैं जो सभी लोगों के लिये सभी कालों में प्रयुक्त हो सकते हैं। यदि कनाडा के लिए कोई उपबन्ध उपयुक्त हो सकता है तो वह हमारे देश के लिए भयस्पद हो सकता है क्योंकि किन्हीं दो देशों का विकास समान रूप से नहीं हुआ है। कनाडा में जो कुछ हो रहा है, अथवा जो हुआ है, वह संभव है हमारे देश में न हो। इसलिये मैं इसे निरर्थक ही समझता हूं कि केवल संविधानिक औचित्य के उद्देश्य से हम कई ऐसी संस्थाओं को स्थापित कर दें, जो एक दूसरे के विरुद्ध हों।

मैं एक बात और कहूंगा। मुझे ऐसी बातें कहने में कोई प्रसन्नता नहीं होती जो देवताओं को नापसन्द हों। किन्तु मुझे एक कर्त्तव्य का पालन करना है। मुझे इस देश से प्रेम है और मैं किसी भी विचारधारा की वेदी पर उसके हितों का बलिदान नहीं करना चाहता। मैं साम्यवाद को, अथवा समाजवाद को अथवा किसी भी अन्य वाद को स्वीकार करने के लिए तैयार हूं किन्तु शर्त यह है कि मुझे यह विश्वास हो जाये कि उससे राज्य की नींव पक्की होगी। यदि उसकी नीव सुदृढ़ करने में समर्थ न हों तो मैं उसका केवल इस कारण समर्थन न करूंगा कि लोकतंत्र की प्रशंसा करने की प्रथा चल पड़ी है। मैं सच्चे हृदय से लोकतंत्र से प्रेम करता हूं, किन्तु मेरी यह धारणा है कि अनियंत्रित तथा अनियमित लोकतंत्र से इस समय देश विपत्ति में पड़ जायेगा। मुझे किसी के विरोध में कुछ नहीं कहना है। सदस्यों को अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता है किंतु जिस प्रकार मैं इस संबंध में चर्चा करता रहा हूं उससे मेरे संकट में पड़ने की आशंका है।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रांत : जनरल): सभापति जी, जिन धाराओं पर इस समय विवाद चल रहा है, मुझे उसके संबंध में यह निवेदन करना है कि मूल धारायें जैसी प्रस्तावित विधान में हैं, अर्थात् द्वारा 188 जो विधान के चौथे भाग में आती हैं और 275 जो ग्यारहवें भाग में आती है, वह इसी तरह से रहनी चाहियें, उनमें किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। इसलिए कि धारा 188 ऐसी विकट परिस्थिति के साथ संबंधित है जिसमें प्रादेशिक शासकों को, प्रांत के गवर्नर और स्टेट के शासकों को विशेष परिस्थिति में विकट एवं संकटमय परिस्थिति उत्पन्न हो जाने की घोषणा करने का अधिकार है। उदाहरणार्थ, जैसे कि आज बंगाल में या मद्रास में कुछ कठिनाइयां हैं। कल्पना कीजिये कि यदि ये कठिनाइयां उग्र रूप धारण कर लें, तो ऐसी आवश्यकता पड़ सकती है कि वहां पर गवर्नर भीषण और विकट परिस्थिति उत्पन्न हो जाने की घोषणा करे।

धारा 275 ऐसी जगह आती है, जहां पर भारतीय संघ के अध्यक्ष को विकट परिस्थिति की घोषणा करने का अधिकार है। दोनों परिस्थितियां दो प्रकार की हो सकती हैं। एक वह परिस्थिति है, जिसमें जैसाकि पिछले महायुद्ध में जर्मनी के पोलैंड के ऊपर आक्रमण किया और उससे संसार में एक व्यापक युद्ध छिड़ गया। उस व्यापक युद्ध के छिड़ने से भारत वर्ष में उस समय जो तत्कालीन हुकूमत थी, जो शासन था उसको आवश्यकता पड़ी कि यहां पर एक घोषणा की जाये। वह एक परिस्थिति है, जो संसारव्यापी समस्या से पैदा होती है। इसके कारण सारे राष्ट्र पर एक विपत्ति के बादल छा सकते हैं। इन परिस्थितियों में जो संघ का अध्यक्ष है उसको स्वयं अपने ज्ञान से और बुद्धि से इस प्रकार की घोषणा करनी पड़ती है। किन्तु इसके अतिरिक्त जो प्रादेशिक शासक हैं उनके सामने उनकी अपनी समस्यायें हो सकती हैं और उन समस्याओं के अनुरूप अपनी बुद्धि का सहारा लेकर स्वयं घोषणा करनी पड़ेगी। हमको वह अधिकार उनको देना होगा।

सैक्शन 93, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 की जो बातें हैं और जिनके आधार पर केन्द्र ने जो अधिकार अपने लिये सुरक्षित रखे थे, उन अधिकारों को दो-तीन धाराओं में बांटकर इस तरह से अब रखने की चेष्टा की गई है। इस देश से अंग्रेज तो चले गये मगर अंग्रेजियत नहीं गई, वह अविश्वास नहीं गया। अंग्रेज हमें एक हाथ से तो एक चीज देते थे मगर दूसरे हाथ से उसको छीन लेने की कोशिश करते थे। अंग्रेज शासक दिल्ली में बैठकर शासन चलाते थे। विवश होकर, आन्दोलन से परेशान होकर उन्होंने यहां की जनता को संतुष्ट करने के लिए कुछ अधिकार दिये। प्रादेशिक स्वतन्त्रता, प्रावेन्शियल आटोनौमी जिसे कहते हैं, उसे देने के बाद भी उन्हें यह विश्वास नहीं था कि यदि कोई परिस्थिति ऐसी पैदा हो जाये जिसमें अंग्रेजी हुकूमत का साथ देना सूबों के लिए आवश्यक हो, वहां पर भी सूबे काम में आयेंगे तो इन परिस्थितियों में सूबों की हुकूमत को अपने हाथ में कर लेने की उनकी स्वाभाविक इच्छा थी। वह ईमानदारी से हमारे हाथों में शासन छोड़ना नहीं चाहते थे। हम लोगों ने सन् 1939 ई. में युद्ध छिड़ने के बाद उसका विरोध किया और सूबों की हुकूमतों ने उसके विरुद्ध असेम्बलियों में प्रस्ताव पास किये। बात यह थी कि जो विदेशी हुकूमत उस समय यहां पर जनता की इच्छा के विरुद्ध राज्य चला रही थी, हम उसके साथ नहीं थे। वह चाहती थी कि यहां के लोग और हमारा देश युद्ध में भाग ले मगर हमारी जनता इस बात के विरुद्ध थी। महात्मा गांधी जी ने भी राष्ट्र को यह राय दी थी कि

[श्री अलगूराय शास्त्री]

युद्ध में भाग लेना हराम है। उस समय दो प्रकार के विचार चल रहे थे। केन्द्रीय शासन हमें भाग लेने के लिये मजबूर कर रहा था और देश की आजादी चाहने वाली संस्थायें, स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाली संस्थायें, उसका विरोध करना चाहती थीं और उसको हराना चाहती थी। उस युद्ध में भाग लेने के लिए क्या कारण हैं, यह वह सरकार से पूछना चाहती थीं और इसी कारण आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की मीटिंग भी हुई थी। इसके कारण लड़ाई छिड़ गई और सन् 1942 ई. का भीषण आन्दोलन शुरू हुआ। इसी युद्ध का यह फल था। तो जो सन् 1935 का गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट है, उसको हम बाइबिल मानकर, उसका अनुवाद बनाकर उस पर हम चलें यह उचित नहीं है। परन्तु हो ऐसा ही रहा है। "श्रुत्या एक वाक्यत्वात्, आनर्थक्यम् तदार्थनाम्"। जो बात श्रुति के वाक्यों के अनुसार हो वहीं प्रमाण—इसी प्रकार जो 1935 एक्ट के अनुसार है वही ठीक है यह मानकर ड्राफ्टिंग कमेटी 1935 की धाराओं को इस विधान में रखती जा रही है।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट 1935 के आधार पर जो विदेशी हुकूमत यहां चल रही थी उसने अपने देश की कम्पनियों की रक्षा के लिए उस एक्ट की धारा 299 में बिना पर्याप्त मुआवजा दिये किसी सम्पत्ति को न लेने का विधान किया। उसे भय था कि स्वतंत्र भारत में ये जायदादें छिन जायेगी। उसी का अनुकरण हम आज इस विधान की धारा 24 में कर रहे हैं। इस वक्त धारा 93 हमारे सामने आई तो वह इस रूप में खड़ी है। सैक्शन 93 को देखकर हमको प्रसन्नता होती है जैसा कि वह ओरिजिनल ड्राफ्ट में हैं। मूल विधान की धारा में 188, 275, 276, 277 तथा 278, एक्ट 1935 की धारा 93 के ही रूप हैं। ये आवश्यक और अनिवार्य हैं। धारा 188 में इस बात का ख्याल करके कि हुकूमतों के भीतरी संघर्ष का सामना करना पड़ेगा प्रादेशिक शासक को विशेष अधिकार दिया गया है। यह एक सही बात है।

जब स्वतंत्रता आती है तो उसके साथ ही साथ बहुत सी आपत्तियों का भी सामना करना पड़ता है। आज बंगाल के एन्टी सोशियल एलीमेंट बहुत जोरों पर है। वहां पर वह हुकूमत को तबाह करना चाहता है। मद्रास में भी हम यही बात देख रहे हैं। हमने हैदराबाद में भी इस दृश्य को देखा। परन्तु आज जो भी झगड़े हम देख रहे हैं वह वहां के स्थानिक झगड़े हैं। इन कलहों के कारण ऐसी परिस्थिति पैदा हो सकती हैं कि तत्काल हस्तक्षेप करने की आवश्यकता हो। वह तत्कालीन हस्तक्षेप कौन करे, किसको करना चाहिये "दि मैन एट दि स्पौट मस्ट बी ट्रस्टेड।" स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने बड़ी सुन्दरता से इस वाक्य का उल्लेख किया है। "दि मैन एट दि स्पौट मस्ट बी ट्रस्टेड"। अविश्वास से अविश्वास पैदा होता है। और विश्वास से विश्वास पैदा होता है। स्थानिक अधिकारी पर विश्वास करना ही चाहिये। हम एक गवर्नर नियुक्त करते हैं और उसको बहुत बड़ी और लम्बी तनख्वाह देते हैं। बहुत सुख-सम्पन्न बनाकर उसे हम रख देते हैं मगर उससे कहते हैं कि किसी चीज को हाथ न लगाना। नाम गवर्नर होगा किन्तु काम कुछ नहीं। तो यह तो गवर्नर शब्द के उच्चारण में थोड़ा भेद कर दें तो वास्तव में वह "गोबरनर" रह जायेगा। भरत ने खड़ाऊ रखकर राज्य किया था। वह राम की उस खड़ाऊं की पूजा किया करते थे। आपके ये गवर्नर तो सिर्फ गोबरनर ही रह जायेंगे,

गवर्नर नहीं। एक आदमी को इस तरह से तबाह कर देना कहां की बुद्धिमता है? फिर इतनी बड़ी तनख्वाह उसे देने की क्या आवश्यकता है? ऐसी दशा में तो जो खर्चा इन गवर्नरों पर होगा अगर उसको बचा दिया जाये और गरीबों के काम में लगा दिया जाये तो बहुत बड़ा काम होगा और इतना ज्यादा पैसा हमारी गरीब जनता का बच जायेगा। गवर्नर हैं, प्रादेशिक शासक है, मगर उस गरीब को इतना अधिकार नहीं है कि वह भीषण परिस्थिति के वक्त यह निर्णय कर ले कि इस समय भीषण परिस्थिति की घोषणा करनी है। धारा 188 के आधार पर वह भीषण परिस्थिति की घोषणा तो कर सकता है, जैसा कि वह विधान में उल्लेख है। उसके ऐसा करने के बाद उसके ऊपर वह दायित्व लगा हुआ है कि वह तत्काल सरकार को सूचित कर दे, केन्द्रीय सरकार के अध्यक्ष को इस बात की सूचना दे दे कि ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है। जब ऐसी परिस्थिति का अनुशीलन करना, मनन करना-अध्ययन करना अध्यक्ष के लिए रह जाता है। वह विचार-विमर्श कर सकता है और अगर वह चाहे तो इस घोषणा को वापस भी ले सकता है, बढ़ा सकता है। जो कुछ भी वह करना चाहे कर सकता है। ऐसा वह धारा 278 के अनुसार करेगा।

डाक्टर अम्बेडकर का यह ख्याल है कि उनके ऊपर यह आरोप लगाया जाता है कि ड्राफ्टिंग कमेटी अपने विचार में स्थिर नहीं है। डॉक्टर अम्बेडकर के लिये मेरे मन में बड़ा आदर है। ड्राफ्टिंग कमेटी की जो बुद्धिमता है हम लोग उसकी सराहना करते हैं। यह धारायें ड्राफ्टिंग कमेटी ने बनाई हैं। उसमें हमारा हाथ नहीं है। हम उनके सामने धारा 188 तथा 278 उपस्थित करते हैं। यह धारायें पर्याप्त और सम्पूर्ण हैं। 277(अ) धारा से यह अभिप्राय है कि केन्द्र के शासन के ऊपर जो दायित्व है वह उसको बता दिया जाये अर्थात यह कि प्रादेशिक शासन व्यवस्था कायम रखने की जिम्मेदारी उसके ऊपर है। यह तो स्वयं स्पष्ट है। "अनुक्तमपि उक्तं भवति," बिना बताये भी बताया हुआ है। प्रादेशिक शासक यह घोषणा कर सकता है कि विकट परिस्थिति पैदा हो गई है। यह धारा 188 में लिखा हुआ है। वह ऐसी घोषणा करने के बाद इस बात के लिये मजबूर है कि वह केन्द्रीय गवर्नमेंट को सूचना दे दे।

सूचना इसलिये दी जाती है कि इस सूचना के बाद जो कुछ कार्रवाइयां आवश्यक हों वह कार्रवाइयां की जायें। प्रादेशिक शांति और सुव्यवस्था को कायम रखने के लिए कदम उठाये जायें। इसके लिये धारा 278 को धारा 188 के साथ पढ़े जाने के बाद केन्द्र का जो कर्त्तव्य प्रादेशिक व्यवस्था के लिये है वह पूरा हो जाता है। 277(ए) तथा 278 (ए) रिडैंडैट हैं, अनावश्यक हैं। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि यह जो नये संशोधन दिन प्रतिदिन आते रहते हैं, यदि बहुत विचारपूर्वक आवें तो जो नये-नये संशोधन कामत साहब और शिब्बनलाल जी सक्सेना आदि की तरफ से आ जाते हैं वह भी अनावश्यक हो जाये और हम ड्राफ्ट को आसानी के साथ पास करके दूसरे उपयोगी कार्यों में लगें।

मैं आपसे एक बात और कहना चाहता हूं। पिछली अंग्रेजी हुकूमत ने 1939 ई. के बाद तरह-तरह के आर्डिनेंस निकाले। एक मामूली कांस्टेबिल को अधिकार था कि वह 15 दिन के लिये किसी को जेल में बन्द कर सकता था। फिर बाद में यह अवधि 6 महीने तक बढ़ाई जा सकती थी। तो उस समय एक कांस्टेबिल को 15 दिन के लिए डिटेन करने का अधिकार था। हम यह अधिकार भी गवर्नर

[श्री अलगूराय शास्त्री]

को देने को तैयार नहीं हैं। इस तरह केन्द्रीकरण का जो यह भूत सवार हो गया है कि जो कुछ करे वह केन्द्र ही करे और प्रादेशिक शासन स्वतंत्र न रहे इससे हम अविश्वास को जन्म दे रहे हैं। इस प्रकार अविश्वास को जन्म देने से अविश्वास ही बढ़ेगा और उसी की सन्तति और सन्तान में वृद्धि होगी। इसके अलावा लोकल इनीशियेटिव भी मारा जायेगा। स्वयं अपनी बुद्धि से कार्य करने की क्षमता नष्ट हो जायेगी।

मैं डाक्टर अम्बेडकर को इस बात के लिए बधाई देना चाहता हूं कि वह उस अशांति की कल्पना कर रहे हैं कि हमारा जो बार्डर प्राविंस ईस्ट पंजाब है वहां का पूरा मंत्रिमंडल और गवर्नर एक क्लीक बनाकर मुमकिन है कि पाकिस्तान से मिल जायें या मुमकिन है कि और किसी से मिल जाये।

आसाम कहीं बरमा से मिल जाये और इस तरह अजीब किस्म की बातें पैदा हो जायें। राजा को संशक होना चाहिये क्योंकि लिखा है कि राजा को अपनी स्त्री और पुत्र से भी आशंका रखनी चाहिये। उस आशंका के आधार पर इस प्रकार केन्द्र को सुदृढ़ बनाये रखने की भावना पैदा हो सकती है और जो ये नये-नये संशोधन पेश किये गये हैं उनका मूल्य अपने स्थान पर इस दृष्टि से हो सकता है। किन्तु दूसरे पक्ष को भी हमें देखना चाहिये। ये जो गवर्नर हैं वे भी केन्द्र के सुदृढ़ स्तम्भ हैं। उनके ऊपर अविश्वास रखना उचित नहीं है। इसलिये मैं कहना चाहता हूं कि यद्यपि मैं इन संशोधनों का कोई तीव्र विरोध करने के लिये नहीं खड़ा हुआ हूं, क्योंकि मैं नहीं समझता कि मेरी बुद्धिमता डॉक्टर अम्बेडकर की बुद्धिमता और ड्राफ्टिंग कमेटी की बुद्धिमता से ज्यादा है, किन्तु मैं नम्र निवेदन करना चाहता हूं कि डॉक्टर अम्बेडकर तथा ड्राफ्टिंग कमेटी इस बात पर गंभीरता के साथ विचार करे कि क्या हमारे मौलिक ड्राफ्ट से काम नहीं चलाया जा सकता, जिससे कि आप अपने नये संशोधनों को वापस ले लें और दूसरे सदस्य भी अपने संशोधनों को वापस ले लें। इतने ही शब्दों के साथ मैं यह निवेदन करना चाहता था।

***अध्यक्षः** मैं यह देखता हूं कि इस विषय पर कई अन्य सदस्य भी बोलना चाहते हैं किन्तु सभा इस पर पांच घंटे से अधिक समय तक विचार कर चुकी है। मेरे विचार से अब हमें बहस समाप्त कर देनी चाहिये क्योंकि मैं समझता हूं कि अब कोई नये तर्क उपस्थित नहीं किये जायेंगे। यदि माननीय सदस्य अभी तक जो तर्क उपस्थित किये गये हैं उन्हें सुनने के पश्चात् भी कोई निश्चय नहीं कर सके हैं तो कुछ और भाषण सुनकर भी वे कोई निश्चय न कर सकेंगे। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या सभा बहस समाप्त करना चाहती है?

***कई माननीय सदस्यः** अब मत लिया जाये, अब मत लिया जाये।

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, यद्यपि इन अनुच्छेदों पर पांच घंटे तक बहस हो चुकी है किन्तु मेरे विचार से इस बहस में कोई भी ऐसी बात नहीं कही गई जो मुझे इन अनुच्छेदों में सन्निहित सिद्धांतों को बदलने के लिए प्रेरित करे। इसलिए मैं लम्बा उत्तर देकर सभा का समय नष्ट न करूंगा।

मैं पहले एक मिनट के लिये उस संशोधन को उठाऊंगा जो मेरे मित्र श्री कामत ने अनुच्छेद 277 (क) के संबंध में प्रस्तुत किया है। उनके संशोधन का आशय यह था कि 'और' शब्द के स्थान पर 'अथवा' शब्द रखा जाये। मेरे विचार से इस संशोधन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस प्रसंग मे "और" शब्द संबंध-बोधक भी है और संबंध विच्छेदक भी और उसे प्रसंगानुसार "और" या "अथवा" के अर्थ में पढ़ा जा सकता है। इसलिये मेरे विचार से इस संशोधन को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, यद्यपि मैं इस संशोधन के प्रस्तावक महोदय के उद्देश्य की प्रशंसा करता हूं।

दूसरा संशोधन, जिसकी मैं चर्चा करना चाहता हूं मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना का संशोधन है जिसके द्वारा उन्होंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि राष्ट्रपति को उद्घोषणा से विधान-मंडल का विघटन करने की भी शक्ति प्राप्त हो। मैं इससे सहमत हूं कि इसके बारे में भी उपबन्ध होना चाहिये, क्योंकि विधान-मंडल की ओर संकेत करके ही प्रांत के लोगों को सुव्यवस्था स्थापित करने का अवसर दिया जाना चाहिये। किन्तु मैं यह देखता हूं कि अनुच्छेद 278 के खंड (1) के उपखंड (क) से यह उद्देश्य पूरा हो जाता है क्योंकि उपखंड (क) द्वारा यह प्रस्तावित किया गया है कि राज्यपाल अथवा राजप्रमुख जिन शक्तियों को प्रयोग करता है उन्हें राष्ट्रपति अपने हाथ में ले सकता है। राज्यपाल को विधान-सभा को विघटित करने की भी शक्ति प्रदान की गई है और वह उसे प्रयोग कर सकता है। इसलिये जब राष्ट्रपति उद्घोषणा निकालेगा और उपखंड (क) के अधीन वर्णित शक्तियों को अपने हाथ में ले लेगा तो विधान-मंडल को विघटित करने तथा नवीन निर्वाचन करने की शक्ति भी उसे स्वतः प्राप्त हो जायेगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की मंत्रणा से इस शक्ति को प्रयोग करेगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने जिस सिद्धांत का निरूपण किया है वह उपखंड (क) में सन्निहित है और इस कारण उसके विषय में किसी पृथक् उपबन्ध को रखने की आवश्यकता नहीं है।

अब मैं पंडित कुंजरू ने जो कुछ कहा है उसके संबंध में बोलूंगा। पहली बात, यदि मुझे ठीक स्मरण है, उन्होंनें यह कही थी कि संविधानिक तंत्र के गतिशून्य होने पर प्रशासन को अपने हाथ में ले लेने की शक्ति एक नवीन शक्ति है और उसका उदाहरण किसी भी संविधान में नहीं मिलता। मेरा उनसे इस संबंध में मतभेद है और मैं उनका ध्यान अमेरिका के संविधान के उस अनुच्छेद की ओर आकृष्ट करता हूं जिसमें स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका का यह कर्त्तव्य है कि वह गणराज्य के संविधान की रक्षा करे। जब हम यह कहते हैं कि इस संविधान का संधारण इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार ही होना चाहिये तो इसका अर्थ वहीं है जो अमेरिका के संविधान की शब्दावली का है, अर्थात् हमारा आशय यह है कि इस संविधान में जिस संविधान की रूप-रेखा निश्चित की गई है उसका संधारण होना चाहिये। इसलिये जहां तक इस प्रश्न का संबंध है, मेरे विचार से, मसौदा-समिति ने एक सुनिश्चित सिद्धांत का परित्याग नहीं किया है।

एक आलोचना यह भी की गई है कि संविधान के अनुच्छेद 275 और 276 को देखते हुए अनुच्छेद 278 और 278(क) की आवश्यकता नहीं है। मैं आदरपूर्वक

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

यह निवेदन करना चाहता हूं कि पंडित कुंजरू अनुच्छेद 275 और वर्तमान अनुच्छेद 278 के उद्देश्यों को बिल्कुल गलत समझे हैं। उनका तर्क यह था कि आखिर उद्देश्य यही है कि प्रांतीय विषयों के संबंध में विधि-निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाये। यह अधिकार अनुच्छेद 276 के अधीन ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि उद्घोषणा के निकाले जाने के पश्चात् सूची 2 में वर्णित सभी विषयों के संबंध में विधि-निर्माण का अधिकार इस अनुच्छेद के अधीन केन्द्र को प्राप्त हो जाता है। मेरे विचार से वे अनुच्छेद 275 और 276 तथा अनुच्छेद 278 और 278(क) का सीमित अर्थ ही समझ पाये हैं।

मैं सबसे पहले सभा का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि ये दो अनुच्छेद-मालायें भिन्न अवसरों पर प्रयोग में आयेंगी। अनुच्छेद 275 के अधीन केन्द्र तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब युद्ध छिड़ गया हो अथवा अन्दर से या बाहर से आक्रमण हुआ हो। अनुच्छेद 278 में युद्ध अथवा आक्रमण के अतिरिक्त अन्य कारणों से शासन-तंत्र के विफल हो जाने का उल्लेख है। इसलिये, जैसाकि मैं कह चुका हूं, कार्यसाधक खंड भिन्न हैं। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 275 के अधीन यदि युद्ध की घोषणा की गई हो तो उससे प्रांतीय संविधान को निलम्बित करने का प्राधिकार प्राप्त नहीं हो जाता। प्रांतीय संविधान प्रवर्तन में रहेगा। विधान-मंडल कार्य करता रहेगा और उसे संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियां प्राप्त रहेंगी। कार्यपालिका को कार्यपालिका-शक्ति प्राप्त रहेगी और वह प्रांत की विधियों के अनुसार प्रांत का प्रशासन करती रहेगी। अनुच्छेद 276 के अधीन केन्द्र को केवल विधि-निर्माण की तथा प्रशासन की समवर्ती शक्ति प्राप्त हो जायेगी। अनुच्छेद 276 से केवल इतना ही होगा। किन्तु अनुच्छेद 278 के प्रवर्तन में आने पर स्थिति बिल्कुल भिन्न हो जायेगी। प्रांतों में विधान-मंडल न रह जायेंगे क्योंकि विधान-मंडल निलम्बित कर दिये जायेंगे। जब तक कि राष्ट्रपति अथवा संसद्, अथवा राज्यपाल उद्घोषणा में किसी प्रकार की कार्यपालिका शक्ति का उल्लेख न करे, वहां कुछ भी कार्यपालिका-शक्ति न रह जायेगी। ये दो स्थितियां बिल्कुल भिन्न हैं। मेरे विचार से यह आवश्यक है कि अनुच्छेद 275 और अनुच्छेद 278 में इस आशय के शब्द रखकर हम इस विभेद को बनाये रखें। मेरे विचार से इन दो स्थितियों में अन्तर न रखने से बहुत भ्रम उत्पन्न हो जायेगा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** (संयुक्तप्रांत : जनरल): क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि मेरे माननीय मित्र एक बात को स्पष्ट करें? क्या अनुच्छेद 278 और अनुच्छेद 278 (क) का उद्देश्य यह है कि प्रांतों में सुशासन स्थापित करने के लिए केन्द्रीय सरकार प्रांतीय मामलों में हस्तक्षेप करे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं। केन्द्र को यह प्राधिकार नहीं प्रदान किया गया है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** अथवा क्या वह तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब प्रांत का कुशासन होने से लोक-शांति संकट में पड़ गई हो?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब वहां का शासन प्रांतों के लिए निर्धारित संविधानिक शासन-संबंधी उपबन्धों के अनुरूप न हो रहा हो। इसका निर्णय केन्द्र करेगा कि किसी प्रांत में सुशासन है या नहीं। इस संबंध में मुझे कुछ भी संदेह नहीं है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरूः** "संविधान के उपबन्ध" पदावली का ठीक-ठीक अर्थ क्या है? सभा को माननीय सदस्य महोदय से इसकी जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है कि "संविधान के उपबन्धों के अनुसार" पदावली का क्या अर्थ है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** सारे विषय की परीक्षा करने में तथा प्रत्येक अनुच्छेद का उल्लेख करके यह बताने में कि अमुक अनुच्छेद में अमुक सिद्धांत सन्निहित है और यह कि किसी प्रांतीय सरकार अथवा विधान-मंडल के कौन से कार्यों से संविधानिक तंत्र विफल हो जायेगा, मुझे बहुत देर लगेगी। "संविधानिक तंत्र का विफल हो जाना" पदावली भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में प्रयुक्त है। इसलिये यह सभी को विदित होगा कि उसका व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक अर्थ क्या है। मेरे विचार से इसकी अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): प्रोफेसर सक्सेना ने और मैंने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनका क्या होगा? क्या डॉ. अम्बेडकर उनका उत्तर देने नहीं जा रहे हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं उन्हें स्वीकार नहीं करता हूं। मैं केवल उन संशोधनों की चर्चा कर रहा था अथवा उनका उत्तर दे रहा था जिनमें, मेरे विचार से, कुछ सार था। मैं प्रत्येक प्रस्तुत संशोधन की चर्चा नहीं कर सकता।

***श्री एच.वी. कामतः** डॉ. अम्बेडकर प्रस्तुत संशोधनों में से केवल शाब्दिक संशोधनों का उत्तर दे रहे हैं। क्या उन्हें अन्य संशोधनों का उत्तर न देना चाहिये?

***अध्यक्षः** मैं डॉ. अम्बेडकर को किसी विशेष रूप में उत्तर देने के लिए विवश नहीं कर सकता। उन्हें अपने ढंग से उत्तर देने का अधिकार है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बडेकरः** सामान्य बहस में यह बताया गया था कि इन अनुच्छेदों का दुरुपयोग होने की संभावना है। इस संबंध में मैं यह नहीं कहता कि इन अनुच्छेदों का दुरुपयोग नहीं हो सकता अथवा इनका राजनैतिक उद्देश्यों के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता। किन्तु संविधान के जिस भाग में भी केन्द्र को प्रातों के अधिकार को अपने हाथ में ले लेने की शक्ति दी गई है, उसके संबंध में यह आपत्ति की जा सकती है। वास्तव में अपने माननीय मित्र श्री गुप्ते के समान मेरी भी यही भावना है कि हमें यही आशा करनी चाहिये कि ये अनुच्छेद कभी भी प्रवर्तन में न लाये जायेंगे और उनका केवल उल्लेखमात्र ही रहेगा। यदि उन्हें कभी प्रवर्तन में लाया भी गया तो मुझे आशा है कि राष्ट्रपति, जिसे ये शक्तियां प्रदान की गई हैं, प्रांतों का प्रशासन पूर्णतया निलम्बित करने के पूर्व यथोचित सतर्कता बरत लेगा। मुझे आशा है कि पहले वह यह कदम उठायेगा कि जो प्रांत दोषी होगा उसे वह चेतावनी देगा कि वह संविधान के आशय के अनुसार कार्य नहीं

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

कर रहा है। यदि उस चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं हुआ तो वह निर्वाचन के लिए आदेश देगा जिससे प्रांत के लोग अपने मामले स्वयं निबटा सकेंगे। इन दो उपचारों के विफल होने पर ही वह इस अनुच्छेद का आश्रय लेगा। इस प्रकार की स्थिति में ही वह इस अनुच्छेद के अधीन कार्यवाही करेगा। इस स्थिति में हम यह न कह सकेंगे कि ये अनुच्छेद निष्प्रयोजन ही प्रविष्ट किये गये हैं अथवा यह कि राष्ट्रपति ने मनमाने ढंग से काम किया है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या डॉ. अम्बेडकर अब सभा को यह आश्वासन दे सकते हैं कि अनुच्छेद 143 में यथोचित संशोधन किया जायेगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह कह चुका हूं और इसे फिर दुहराता हूं कि जब मसौदा-समिति दूसरे पठन के पश्चात् फिर समवेत होगी, उस समय वह सभी उपबन्धों पर विचार करेगी और आश्वयकता हुई तो अनुच्छेद 143 में यथोचित संशोधन करेगी।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 188 निकाल दिया जाये"।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 188 संविधान से निकाल दिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 277-क को उठाता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 277(क) में 'Union' (संघ) शब्द के स्थान पर 'Union Government' (संघीय सरकार) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 221 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 277(क) में 'and' (और) शब्द के स्थान पर, जहां वह पहली बार आया है, 'or' (अथवा) शब्द रखा जाये।"

सशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में 'internal disturbance' (आभ्यंतरिक अशांति) शब्दों के स्थान में 'internal insurrection and chaos' (आभ्यंतरिक विद्रोह अथवा अराजकता) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 277 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'277-A. It shall be the duty of the Union to protect every State against external aggression and internal disturbance and to ensure that the government of every State is carried on in accordance with the provisions of this Constitution.' "

Duty of the Union to protect States against external aggression and internal disturbance.

(277-क. बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशांति से प्रत्येक राज्य का संरक्षण करना, तथा प्रत्येक राज्य की सरकार का संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये, यह सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा।)

बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशांति से राज्यों का संरक्षण करने का संघ का कर्त्तव्य

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 277 (क) संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 277 (क) संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्तावित अनुच्छेद 278 के खंड (1) में 'Ruler' (शासक) शब्द के स्थान पर 'Rajpramukh' (राजप्रमुख) शब्द रखा जाये।

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्तावित अनुच्छेद 278 के खंड (1) से 'or otherwise' (अथवा यदि) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची-2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्तावित अनुच्छेद 278 के खंड (1) में 'is satisfied that' (समाधान हो जाये कि) शब्दों के पश्चात् 'a grave emergency has arisen which threatens the peace and tranquillity of the State and that' (गंभीर आपात उपस्थित हो गया है जिससे राज्य की शांति तथा प्रशांति संकट में पड़ गई है और यह कि) शब्द जोड़ दिये जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्तावित अनुच्छेद 278 के खंड (4) के पहले परन्तुक के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

Provided that the President may if he so thinks fit order at any time during this period a dissolution of the State Legislature followed by a fresh general election, and the Proclamation shall cease to have effect from the day on which the newly elected legislature meets in session.

(परन्तु राष्ट्रपति, यदि वह उचित समझे तो, राज्य के विधान-मंडल के विघटन के लिये तथा उसके पश्चात् सामान्य निर्वाचन करने के लिए, आदेश दे सकता है और उद्घोषणा उस दिन से प्रभावशून्य हो जायेगी जब से नव-निर्वाचित विधान-मंडल सत्रस्थ होगा।)"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 278 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखे जायें:

'278. (1) If the President, on receipt of a report from the Governor or Ruler of 'a State or otherwise is satisfied that the government of the State cannot be carried on in accordance with the provisions of this Constituion, the President may by Proclamation—

Provisions in case of failure of constitutional machinery in States.

(a) assume to himself all or any of the functions of the Government of the State and all or any of the powers vested in or exercisable by the Governor or Ruler, as the case may be, or any body or authority in the State other than the Legislature of the State;

(b) declare that the powers of the Lagislature of the State shall be exercisable by or under the authority of Parliament;

(c) make such incidental and consequential provisions as appear to the President to be necessary or desirable for giving effect to the objects of the Proclamation, including provisions for suspending in whole or in part the operation of any provisions of this Constitution relating to any body or authority in the State:

Provided that nothing in this clause shall authorise the President to assume to himself any of the powers vested in or exercisable by a High Court or to suspend in whole or in part the operation of any provisions of this Constitution relating to High Courts.

(2) Any such Proclamation may be revoked or varied by a subsequent Proclamation.

(3) Every Proclamation under this article shall be laid before each House of Parliament and shall, except where it is a Proclamation revoking a previous Proclamation, cease to operate at the expiration of two months unless before the expiration of that period it has two months unless before the expiration of that period it has been approved by resolutions of both Houses of Parliament:

[अध्यक्ष]

Provided that if any such Proclamation is issued at a time when the House of the People is dissolved or if the dissolution of the House of the People takes place during the period of two months referred to in this clause and the Proclamation has not been approved by a resolution passed by the House of the People before the expiration of that period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolutions approving the Proclamation have been passed by both Houses of Parliament.

(4) A Proclamation so approved shall unless revoked, cease to operate on the expiration of a period of six months from the date of the passing of the second of the resolution approving the Proclamation under clause (3) of this article:

Provided that if and so often as a resolution approving the continuance in force of such a Proclamation is passed by both Houses of Parliament, the Proclamation shall, unless revoked, continue in force for a further period of six months from the date on which under this clause it would otherwise have ceased to operate, but no such Proclamation shall in any case remain in force for more than three years:

Provided further that if the dissolution of the House of the People takes place during any such period of six months and a resolution approving the continuance in force of such Proclamation has not been passed by the House of the People during the said period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before expiration of that period resolutions approving the Proclamation have been passed by both Houses of Parliament.

278-A. (1) Where by a Proclamation issued under clause (1) of article 278 of this Constitution it has been declared that the powers of the Legislature of the State shall be exerciseable by or under the authority of Parliament, it shall be competent—

Exercise of legislative powers under Proclamation issued under aritcle 278.

(a) for Parliament to delegate the power to make laws for the State to the President or any other authority specified by him in that behalf;

(b) for Parliament or for the President or other authority to whom the power to make laws is delegated under sub-clause (a) of this clause to make laws conferring powers and imposing duties or authorising the conferring of powers and the imposition of duties upon the Government of India or officers and authorities of the Government of India;

(c) for the President of authorise when the House of the People is not in session expenditure from the Consolidated Fund of the State pending the sanction of such expenditure by Parliament;

(d) for the President to promulgate Ordinances under article 102 of this Constitution except when both Houses of Parliament are in session.

(2) Any law made by or under the authority of Parliament which Parliament or the President or other authority referred to in sub-clause (a) of clause (1) of this article would not, but for the issue of a Proclamation under article 278 of this Constitution, have been competent to make shall to the extent of the incompetency cease to have effect on the expiration of a period of one year after the Proclamation has ceased to operate except as respects things done or omitted to be done before the expiration of

[अध्यक्ष]

the said period unless the provisions which shall so cease to have effect are sooner repealed or re-enacted with or without modification by an Act of the Legislature of the State.' "

[278. (1) यदि किसी राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें कि उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा:

राज्यों में सांविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की अवस्था में उपबन्ध

(क) उस राज्य की सरकार के सब या कोई कृत्य, तथा यथास्थिति राज्यपाल, या शासक में, अथवा राज्य के विधान-मंडल को छोड़कर राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी में, निहित, या तद्द्वारा प्रयोक्तव्य सब या कोई शक्तियां अपने हाथ में ले सकेगा;

(ख) घोषित कर सकेगा कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी;

(ग) राज्य में के किसी निकाय या प्राधिकारी से सम्बद्ध इस संविधान के किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णत: या अंशत: निलम्बित करने के लिए उपबन्ध सहित ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध बना सकेगा जैसा कि राष्ट्रपति को उद्घोषणा के उद्देश्य को प्रभावी करने के लिए आवश्यक या वांछनीय दिखाई दे:

परन्तु इस खंड की किसी बात से राष्ट्रपति को यह प्राधिकार न होगा कि वह उच्च-न्यायालय में निहित या तद्द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियों में से किसी को अपने हाथ में ले अथवा इस संविधान के उच्च न्यायालयों से सम्बद्ध किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णत: या अंशत: निलम्बित कर दे।

(2) ऐसी कोई उद्घोषणा किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत या परिवर्तित की जा सकेगी।

(3) इस अनुच्छेद के अधीन की गई प्रत्येक उद्घोषणा संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी तथा जहां वह पूर्ववर्ती उद्घोषणा को प्रतिसंहृत करने वाली उद्घोषणा नहीं है वहां वह दो महीने की समाप्ति पर, यदि उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व संसद् के दोनों सदनों के सकल्पों द्वारा वह अनुमोदित नहीं हो जाती तो, प्रवर्तन में नहीं रहेगी:

परन्तु यदि ऐसी कोई उद्घोषणा उस समय निकाली गई है जबकि लोक सभा का विघटन हो चुका है अथवा लोक-सभा का विघटन इस खंड में निर्दिष्ट दो मास की कालावधि के भीतर हो जाता है तथा यदि ऐसी उद्घोषणा के विषय

में लोक सभा द्वारा उस कालावधि की समाप्ति से पहले को संकल्प पारित नहीं किया गया है तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले सकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाते।

(4) इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, यदि प्रतिसंहृत नहीं हो गई हो तो, इस अनुच्छेद के खंड (3) के अधीन उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले संकल्पों में से दूसरे के पारित हो जाने की तारीख से छः महीने की कालावधि की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी:

परन्तु ऐसी उद्घोषणा के प्रवृत्त रखने के लिए अनुमोदन करने वाला संकल्प, यदि और जितनी बार, संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है तो, और उतनी बार, वह उद्घोषणा, जब तक कि प्रतिसंहृत न हो जाये, उस तारीख से जिससे कि वह इस खंड के अधीन अन्यथा प्रवर्तन में नहीं रहती, छः महीने की और कालावधि तक प्रवृत्त बनी रहेगी, किंतु कोई ऐसी उद्घोषणा किसी अवस्था में भी तीन वर्ष से अधिक प्रवृत्त नहीं रहेगी:

परन्तु यह और भी कि यदि लोक सभा का विघटन छः मास की किसी ऐसी कालावधि भीतर हो जाता है तथा ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोक सभा द्वारा उक्त कालावधि में पारित नहीं हुआ है तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगा जब तक कि उक्त तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा को प्रवर्तन में बनाये रखने का अनुमोदन करने वाले संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाते।

अनुच्छेद 278 के अधीन निकाली गई उद्घोषणा के अधीन विधायिनी शक्तियां।

278. (क) (1) जहां इस संविधान के अनुच्छेद 278 के खंड (1) के अधीन निकाली गई उद्घोषणा द्वारा यह घोषित किया गया है कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी वहां—

(क) राष्ट्रपति को अथवा राष्ट्रपति द्वारा तदर्थ उल्लिखित किसी अन्य प्राधिकारी को राज्य के लिये विधि बनाने की शक्ति देने की संसद् को,

(ख) भारतीय सरकार अथवा उसके पदाधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्ति देने या कर्त्तव्य आरोपित करने के लिए, अथवा शक्तियों का दिया जाना कर्त्तव्यों का आरोपित किया जाना प्राधिकृत करने के लिये, विधि बनाने की संसद् की अथवा राष्ट्रपति की या ऐसी विधि बनाने की शक्ति जिस अन्य आधिकारी में उपखंड (क) के अधीन निहित है उसकी,

(ग) जब लोक सभा सत्र में न हो तब व्यय के लिये संसद की मंजूरी लम्बित रहने तक राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय को प्राधिकृत करने की राष्ट्रपति की,

[अध्यक्ष]

(घ) जब संसद के दोनों सदन सत्र में न हों उस समय इस संविधान के अनुच्छेद 102 के अधीन अध्यादेश प्रख्यापित करने की राष्ट्रपति को,

सक्षमता होगी।

(2) राज्य के विधान-मंडल की शक्ति के प्रयोग में संसद द्वारा अथवा राष्ट्रपति अथवा इस अनुच्छेद के खंड (1) के उपखंड (क) में निर्दिष्ट अन्य प्राधिकारी द्वारा निर्मित कोई विधि जिसे इस संविधान के अनुच्छेद 278 के अधीन की गई उद्घोषणा के अभाव में संसद् या राष्ट्रपति या ऐसा अन्य प्राधिकारी बनाने के लिए सक्षम न होता, उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने के पश्चात् एक वर्ष की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक सिवाय उन बातों के प्रभाव में न रहेगी जो उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गई थीं जब तक कि वे उपबन्ध, जो इस प्रकार प्रभावी न रहेंगे, राज्य के विधान-मंडल के अधिनियम द्वारा उससे पहिले ही या तो निरसित और या रूपभेदों के सहित या बिना पुनः अधिनियमित न कर दिये गये हों।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"प्रस्तावित अनुच्छेद 278 संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 278 संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"प्रस्तावित अनुच्छेद 278(क) संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 278(क) संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 279

(संशोधन संख्या 3026 और 3027 उपस्थित नहीं किये गये)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपात उपस्थित होने पर इस अनुच्छेद के अधीन अनुच्छेद 13 में वर्णित मूलाधिकारों का अपहरण हो जायेगा। यदि इन अधिकारों को निराकृत ही करने का उद्देश्य है तो आपात-काल में ये संसद की विधि द्वारा निराकृत होने चाहियें और केवल कार्यपालिका को यह शक्ति प्राप्त न होनी चाहिये। ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती है जब युद्ध छिड़ जायेगा और बहुत काल तक रहेगा। पिछला महायुद्ध

छः वर्ष तक रहा। किन्तु मेरी समझ में यह नहीं आता कि अनुच्छेद 13 के अधीन प्रदत्त मूलाधिकार छः वर्ष तक सारे देश में क्यों निलम्बित रहें। यह एक बहुत ही असाधारण बात होगी ओर वास्तव में मुझे तो ज्ञात नहीं है कि संसार के किसी भी संविधान के अधीन मूलाधिकार छह वर्ष तक निलम्बित रह सकते हैं।

इसलिए मैं इन संशोधनों को उपस्थित करता हूं:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3027 के संबंध में, अनुच्छेद 279 में 'the State as defined in that Part' (उस भाग में परिभाषित राज्य) शब्दों के स्थान में 'Parliament' (संसद) शब्द रखा जाये।"

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3027 के संबंध में, अनुच्छेद 279 में 'State' (राज्य) शब्द जहां दूसरी बार आया है वहां उसके स्थान पर 'Parliament' (संसद्) शब्द रखा जाये।"

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3027 के संबंध में, अनुच्छेद 279 में अन्त में आये हुए शब्द 'or to take any executive action' (अथवा कोई कार्यपालिका कार्य करने) तथा 'or to take' (अथवा करने) शब्द निकाल दिये जायें।"

इन संशोधनों के फलस्वरूप अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो, इस संविधान के भाग 3 के अनुच्छेद 13 की किसी बात से संसद् की कोई ऐसी विधि बनाने की शक्ति, जिसे बनाने में वह अन्यथा सक्षम होती, निर्बन्धित न होगी।"

मेरे संशोधनों का आशय यह है कि आपात-काल में केवल संसद् को ही अनुच्छेद 13 द्वारा प्रदत्त मूलाधिकारों को निलम्बित करने की शक्ति प्राप्त होगी। अन्यथा यदि ये अधिकार स्वतः निलम्बित हो जायेंगे और इस संबंध में कार्यपालिका मनमाने ढंग से कार्य कर सकेगी तो एक असाधारण स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। यह एक आधारभूत प्रश्न है और मैं माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे इस पर गंभीरता से विचार करें। क्या अनुच्छेद 13 के अधीन हम ऐसे अधिकार देने जा रहे हैं जिनसे आपात-काल में राज्य की सुरक्षा संकट में पड़ जायेगी? मैं यह नहीं मानता। अनुच्छेद 13 में ही इसकी चिंता की गई है कि आपात की अवस्था में इन अधिकारों को इस प्रकार प्रयोग किया जायेगा कि राज्य की सुरक्षा संकट में न पड़े। इस अनुच्छेद के अधीन सात मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है। पहला मूलाधिकार यह है कि सभी नागरिकों को वाक्स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार प्राप्त होगा। यह मूलाधिकार अखंडनीय नहीं है। खंड (2) में कहा गया है कि–

"खंड (1) के उपखंड (क) की कोई बात अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, न्यायालय-अवमान से अथवा शिष्टाचार या सदाचार पर आघात करने वाले, अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने वाले अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति वाले किसी विषय से, जहां तक कोई वर्तमान विधि संबंध रखती हो वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा संबंध रखने वाली किसी विधि को बनाने में राज्य के लिए रुकावट न डालेगी।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इसलिये इस अंतिम खंड की शर्तों के अधीन ही वाक-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य प्रयोग में आ सकता है। इसका अर्थ यह है कि राज्य कोई भी ऐसी विधि बना सकता है जिससे वाक-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य इस प्रकार निर्बन्धित हो जाये कि राज्य की सुरक्षा के दुर्बल होने अथवा राज्य के उलटने की आशंका न रहे। इस मूलाधिकार की शब्दावली में ही आपात-काल के लिये इस अधिकार का परिसीमन सन्निहित है। इसलिये अनुच्छेद 13 के उपबन्धों को निलम्बित करने के लिए अनुच्छेद 279 की आवश्यकता नहीं है। निस्संदेह आपात-काल में राज्य को वाक-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को निर्बन्धित करने का अधिकार है क्योंकि उस अधिकार की शब्दावली में ही यह उल्लेख है कि यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाये कि राज्य की सुरक्षा दुर्बल होने की आशंका हो तो राज्य के लिये इसे रोकने के उद्देश्य से विधि बनाने में किसी बात से रुकावट न होगी। इसलिये यह मेरी समझ में नहीं आता कि वाक-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का मूलाधिकार युद्धकाल में अनिश्चित समय के लिए किस कारण लम्बित किया जा रहा है जबकि मूलाधिकार में ही यह कह दिया गया है कि राज्य की सुरक्षा को सुनिश्चित करने की आवश्यकता पड़ने पर राज्य को इस स्वातंत्र्य को निर्बन्धित करने का प्राधिकार प्राप्त होगा। दूसरा मूलाधिकार यह है कि नागरिकों को शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार होगा। यह अधिकार भी अखंडनीय नहीं है। खंड (3) में कहा गया है कि, "उक्त खंड के उपखंड (ख) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिये गये अधिकार के प्रयोग पर सार्वजनिक व्यवस्था के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धन, जहां तक कोई वर्तमान विधि लगाती हो वहां तक उसके प्रवर्त्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी"। इसलिये सार्वजनिक व्यवस्था के हित में राज्य के लिये किसी भी विधि के बनाने में रुकावट न होगी। श्रीमान्, जब आपात उपस्थित होगा तो राज्य के लिये किसी विधि के बनाने में रुकावट न होगी क्योंकि उस समय राज्य की सुरक्षा को बनाये रखना आवश्यक होगा। इसलिये, मेरे विचार से, शांतिपूर्वक तथा निरायुध सम्मेलन के इस अधिकार को किसी अनिश्चित काल के लिए अथवा युद्ध-काल के लिए केवल इस कारण निलम्बित न रखना चाहिये कि आपात उपस्थित है। मेरे विचार से यह अधिकार पहले से ही परिसीमित है और आवश्यकता पड़ने पर सार्वजनिक व्यवस्था के हित में राज्य कोई भी विधि बना सकता है। इसलिये, श्रीमान्, इस अधिकार की प्रत्याभूति दी जानी चाहिये और इसे युद्ध काल में प्रतिसंहृत अथवा निलम्बित न करना चाहिये।

तीसरा स्वातंत्र्य सन्था या संघ बनाने का स्वातंत्र्य है। यह परन्तुक (4) से परिसीमित है जिसमें कहा गया है, "उक्त खंड के उपखंड (ग) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिये गये अधिकार के प्रयोग पर जनसाधारण के हितों में जहां तक कोई वर्तमान विधि निर्बन्धन लगाती हो वहां तक उसके प्रवर्त्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी"। इसके अधीन भी संस्था और संघ बनाने के अधिकार पर सार्वजनिक व्यवस्था के हित में युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं। इसलिये दीर्घकाल तक अर्थात् छः, सात या आठ वर्ष के युद्ध-काल तक इस अधिकार को निलम्बित रखने की क्या आवश्यकता है? इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, उपखंड (घ), (ङ), (च), (छ) में वर्णित भारत राज्य-क्षेत्र में अबाध संचरण का अधिकार, भारत

राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार और सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार है किन्तु ये तीनों अधिकार खंड (5) से निर्बन्धित हैं जिसमें कहा गया है, "उक्त खंड के उपखंड (घ), (ङ) और (च) की कोई बात उक्त उपखंडों द्वारा दिये गये अधिकारों के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों के अथवा किसी अनुसूचित आदिमजाति के हितों के संरक्षण के लिए युक्तियुक्त निर्बन्धन जहां तक कोई वर्तमान विधि लगाती हो वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी"। इसके अधीन भी जन साधारण के हित में राज्य इस अधिकारों का खंडन करने वाली कोई विधि बना सकता है। इसलिये, श्रीमान्, मेरे विचार से, मूलाधिकारों से ही हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है और उन्हें आपात काल में प्रतिसंहृत करने की आवश्यकता नहीं है। इस अनुच्छेद को पारित करने का प्रभाव यह होगा: लोगों के मूलाधिकार निलम्बित हो जायेंगे। युद्ध-काल की कोई सीमा नहीं है और यह पांच या छः या दस वर्ष तक रह सकता है और इस काल में सारे देश के लोग मूलाधिकारों से वंचित रहेंगे। मैं यह समझता हूं कि यह एक संकटपूर्ण स्थिति है और मैं डॉ. अम्बेडकर से अनुरोध करता हूं कि वे इस खंड पर गंभीरता से तथा यथोचित रूप से विचार करें। यदि आप इस खंड को निकालना उचित नहीं समझते हैं तो कम से कम मेरे संशोधन को स्वीकार कर लीजिये। मैं यह चाहता हूं कि यह शक्ति संसद को प्रदान की जाये और आवश्यकता पड़ने पर वही उसे प्रयोग करे। यदि मूलाधिकारों के परिसीमन पर्याप्त न हों तो संसद् विधि द्वारा आपात-काल के लिए निर्बन्धनों को बढ़ा सकती है। मैं आशा करता हूं कि मेरे संशोधन पर कोई आपत्ति न की जायेगी क्योंकि उसके अधीन आपात के लिए भी व्यवस्था हो जाती है और लोगों को संविधान द्वारा प्रदत्त स्वातंत्र्य भी सुरक्षित रहते हैं। अन्यथा लोग हमारे संविधान पर हंसेंगे और कहेंगे कि एक हाथ से मूलाधिकारों द्वारा लोगों को स्वातंत्र्य दिया गया है और दूसरे हाथ से छीन लिया गया है। क्या हम अपनी संसद् का भी विश्वास नहीं करते? यदि आपात-काल में संसद् का विश्वास न किया गया तो और किसका किया जायेगा? इसलिये, मेरे विचार से, यदि इस अनुच्छेद को निकाल नहीं सकते हैं तो कम से कम इसे संशोधित अवश्य कर दें। मूलाधिकारों में हस्तक्षेप करने की शक्ति केवल संसद् को ही दी जानी चाहिये, अन्य किसी प्राधिकारी को न दी जानी चाहिये।

श्री एच.वी. कामतः अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने अभी इस आशय का जो संशोधन उपस्थित किया है कि आपात की उद्घोषणा के निकाले जाने के पश्चात्, संविधान के अनुच्छेद 13 में प्रत्याभूत मूलाधिकारों को निलम्बित करने की शक्ति केवल संसद् को प्राप्त होनी चाहिये और राष्ट्रपति को प्राप्त न होनी चाहिये, उसका मैं सामान्यतः हृदय से समर्थन तो करता ही हूं किन्तु साथ ही सभा से अनुरोध करता हूं कि अनुच्छेद 280 के नवीन मसौदे को ध्यान में रखते हुए, जो थोड़े समय पश्चात् सभा के सम्मुख रखा जायेगा, अनुच्छेद 279 को रहने देने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि सभा धैर्यपूर्वक अनुच्छेद 280 के मूल मसौदे की तुलना उसके वर्तमान मसौदे से करे तो वह यह देखेगी कि नये मसौदे में संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त सभी अधिकारों को निलम्बित करने का उल्लेख है। मेरे विचार से अनुच्छेद 279 को किसी कारण भी रहने देने की आवश्यकता नहीं है। मेरे मतानुसार आगे के अनुच्छेद 280 को

[श्री एच.वी. कामत]

देखते हुए संविधान में अब अनुच्छेद 279 को रहने देने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है।

जैसाकि मेरे माननीय मित्र श्री सक्सेना ने कहा है, आयात की उद्घोषणा निकलने पर अनुच्छेद 275 अथवा 278 के अधीन किसी राज्य की सरकार के सभी अथवा कोई प्रकार्य राष्ट्रपति अपने हाथ में ले लेगा और उस राज्य के राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की भी सभी शक्तियां उसे प्राप्त हो जायेंगी और वह यह भी घोषित कर सकेगा कि उस राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् प्रयोग करेगी अथवा संसद् के प्राधिकार के अधीन प्रयोग में आयेंगी। इसलिये यदि सभा अनुच्छेद 279 को वर्तमान रूप में स्वीकार करने जा रही है तो यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि इस अनुच्छेद में "राज्य" शब्द् का क्या अर्थ है। डॉ. अम्बेडकर ने जिस अनुच्छेद 279 को उपस्थित किया है उसमें यह उपबंधित है कि आपात की उद्घोषणा के प्रवर्तन में रहने तक संविधान के भाग 3 के अनुच्छेद 13 की किसी बात से उस भाग में परिभाषित राज्य की विधि-निर्माण आदि की शक्ति निर्बन्धित न होगी। यदि हम भाग 3 को देखें तो हमें उसके आरम्भ में "राज्य" शब्द की यह परिभाषा मिलेगी: "'राज्य' के अंतर्गत भारत की सरकार और संसद्, तभा राज्यों में से प्रत्येक की सरकार और विधान-मंडल, तथा भारत राज्य-क्षेत्र के भीतर अथवा भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सब स्थानीय और अन्य प्राधिकारी भी हैं"। जो बात स्पष्ट है उसकी मैं व्याख्या नहीं करना चाहता। हमने कुछ ऐसे अनुच्छेद स्वीकार किये हैं जिनमें यह उपबंधित है कि आपात की उद्घोषणा के निकलने पर राज्यों के विधान मंडल तथा राज्यपाल अथवा राजप्रमुख बहुत कुछ सरकारी कर्मचारियों के ढंग से कार्य करेंगे। राष्ट्रपति सभी शक्तियां अपने हाथ में ले सकता है। मेरे विचार से अनुच्छेद 13 के अधीन प्रदत्त अधिकारों को निर्बन्धित करने अथवा शून्यन करने के लिये जिस कार्यवाही की आवश्यकता होगी उसे करने के लिए राजप्रमुख अथवा राज्यपाल अथवा राज्य का संविधान-मंडल सक्षम न होगा। संसद् अथवा राष्ट्रपति ही उस कार्यवाही को कर सकेगा। मैं समझता हूं कि अच्छा यही होगा कि संसद यह कार्यवाही करे। समझदारी इसी में है कि इस आशय के उपबन्ध को स्थान दिया जाये। यदि हम समझदार हैं तो हम उसे स्थान देंगे। यदि हम समझदार नहीं हैं तो हम उसे स्थान न देगें। किसी भी दशा में, इसे ध्यान में रखते हुए कि भाग 3 के अनुच्छेद 7 में 'राज्य' की यह परिभाषा की गई है कि उसके अतर्गत भारत राज्यक्षेत्र के भीतर अथवा भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सब स्थानीय और अन्य प्राधिकारी हैं, मेरे विचार से समझदारी इसी में है कि इस स्थल पर 'राज्य' शब्द की परिभाषा कर दी जाये ताकि किसी प्रकार का संदेह अथवा कठिनाइयां उत्पन्न न हों। मेरे विचार से इससे भी अधिक समझदारी यह उपबंधित करने में है कि इस सम्बन्ध में संसद् ही विधि बना सकती है न कि राष्ट्रपति।

मैं एक बात और कहना चाहता हूं और वह यह है। क्या वास्तव में भाग 3 में अनुच्छेद 13 से संबंधित इस अनुच्छेद को स्थान देने की आवश्यकता है? मैं अपने माननीय मित्रों से अनुरोध करता हूं कि वे अनुच्छेद 13 को ध्यानपूर्वक

पढ़ें। अनुच्छेद 13 में पांच परन्तुकों को स्थान दिया गया है। इन परन्तुकों में से प्रत्येक में यह उपबंधित है कि चाहे आकस्मिकता की स्थिति उत्पन्न हो या आपात की स्थिति, किसी भी दशा में राज्य की सुरक्षा अथवा सार्वजनिक व्यवस्था संकट में न पड़ने दी जायेगी। जैसाकि इस अनुच्छेद पर बहस होते समय सभा में कहा गया था, इस अनुच्छेद में एक ओर अधिकार प्रदान किये गये हैं और दूसरी ओर उनका निराकरण नहीं तो लघुकरण किया गया है। इसे ध्यान में रखते हुए कि हम जिस अनुच्छेद को पारित कर चुके हैं उसमें राज्य की सुरक्षा तथा सार्वजनिक व्यवस्था के हित में रक्षा कवच हैं और खंड (1) के उपखंड (क) से लेकर उपखंड (छ) तक में वर्णित मूलाधिकार इन रक्षा-कवचों के अधीन प्रयोग नहीं किये जा सकते, मेरे विचार से, संविधान में अनुच्छेद 279 को समाविष्ट करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। अनुच्छेद 279 का संबंध उस स्थिति से है जबकि राज्य की सुरक्षा, देश की अथवा उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में पड़ जायेगी। किन्तु हम इस संबंध में अनुच्छेद 13 के (2) से (6) तक के परन्तुकों में उपबन्ध रख चुके हैं। यद्यपि इन सब परन्तुकों की शब्दावली भिन्न है किन्तु इनका अर्थ और आशय एक ही है और वह यह है कि इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत मूलाधिकारों के प्रयोग में सार्वजनिक व्यवस्था तथा शांति और राज्य की सुरक्षा संकट में न पड़ने दी जायेगी। यदि वह संकट में पड़ी तो उस दशा के लिये इस अनुच्छेद में स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि उसकी किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन में कोई प्रभाव न पड़ेगा अथवा—(यह विचाराधीन अनुच्छेद की दृष्टि से महत्वपूर्ण है) अनुच्छेद में वर्णित विभिन्न मूलाधिकारों के संबंध में विधि बनाने में राज्य के लिये कोई रुकावट न होगी, इत्यादि। हम अनुच्छेद 279 में क्या देखते हैं? "किसी बात से राज्य की कोई विधि बनाने की अथवा कोई कार्यपालिका कार्यवाही करने की उस भाग में परिभाषित शक्ति, जिसे वह अन्यथा बनने अथवा करने के लिए सक्षम होता, निर्बन्धित नहीं होगी।" अनुच्छेद 13 में इस प्रकार का उपबन्ध है और इसे दुहराना आवश्यक ही नहीं बल्कि बेकार भी है।

मैं यह कहता हूं कि अनुच्छेद 279 को निकाल देना चाहिये। मैं यह इसलिए नहीं कह रहा हूं कि इस प्रकार के उपबन्ध की आवश्यकता नहीं है बल्कि इसलिये कि चूंकि सभा अनुच्छेद 13 को स्वीकार कर चुकी है इस कारण इसकी आवश्यकता नहीं रह गई है। किन्तु यदि सभा को यह सुझाव मान्य न हो तो मेरे माननीय मित्र प्रोफ़ेसर शिब्बनलाल सक्सेना का वह संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये जिसका आशय यह है कि इस संबंध में संसद को, न कि राष्ट्रपति की, शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से अनुच्छेद 279 के उपबन्ध कई कारणों से अनावश्यक हैं। मैं यह अनुरोध करना चाहता हूं कि हमें किन्हीं ऐसे उपबन्धों को स्थान न देना चाहिये जिनसे हमारे मूलाधिकार किसी अंश में आधारभूत न रह जायें। यदि आपात-काल में भी किसी मूलाधिकार को निलम्बित करने की आवश्यकता पड़े तो जिस अनुच्छेद को हम पारित कर चुके हैं उसमें इसके लिए पर्याप्त उपबन्ध हैं और इस प्रकार के अनुच्छेद को स्थान देने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि इसमें केवल यही कहा गया है कि चाहे किन्हीं विधियों से भाग 3 के अनुच्छेद 13 में उपबंधित मूलाधिकारों का खंडन अथवा प्रतिसंहार होता हो किन्तु वे प्रवर्त्तन में लाई जायेगी। मैं अनुच्छेद 13 की ओर

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

संकेत करके बताना चाहता हूं कि वर्तमान अनुच्छेद 279 को पारित करने से कितने महत्वपूर्ण अधिकारों पर प्रभाव पड़ेगा। प्रश्न केवल यह नहीं है कि लोगों को सम्मिलन से रोका जाये अथवा उन्हें अन्य लोगों को हिंसा के लिए प्रेरित करने से रोका जाये अथवा वाक-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के अधिकार को प्रयोग करने से रोका जाये। उस अनुच्छेद में भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का, भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का, भूमि के अर्जन और सम्पत्ति के व्ययन का और किसी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का भी उल्लेख है। इसलिये इन अधिकारों को किसी प्रकार अपहरण करने का अर्थ सैनिक विधि के प्रवर्तन की घोषणा करना ही है। वास्तव में इसकी भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 13 के उपखंड (2) के अधीन राष्ट्रपति तथा संसद् को हस्तक्षेप करने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त हो जाती है। श्री कामत इसकी चर्चा कर चुके हैं। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 13 (2) में यह कहा गया है।

"खंड (1) के उपखंड (क) की कोई बात अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, न्यायालय अवमान से अथवा शिष्टाचार या सदाचार पर आघात करने वाले, अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति वाले किसी विषय से, जहां तक कोई वर्तमान विधि संबंध रखती हो वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा संबंध रखने वाली किसी विधि को बचाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी।

इस प्रकार यह उपबन्ध पर्याप्त है और अनुच्छेद 279 में जिस आपात का वर्णन है उसके उपस्थित होने पर इसका आश्रय लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यदि हम उस नवीन अनुच्छेद पर दृष्टि डालें, जिसे हमने अभी पारित किया है, अर्थात यदि हम अनुच्छेद 279 पर दृष्टि डालें तो, जैसा कि मैं कल बता चुका हूं, हम देखेंगे कि उसमें भी संविधान के उपबन्धों को अलग रखने के लिए एक विस्तृत उपबन्ध है। मेरे विचार से यह किसी बात से नहीं झलकता कि मूलाधिकारों से संबंध रखने वाले इस अनुच्छेद का आशय उन उपबंधों से पूरा नहीं हो जाता। अनुच्छेद 279 (1) (ग) में कहा गया है कि:-

> "राज्य में .....ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध बना सकेगा जैसाकि राष्ट्रपति को उद्घोषणा के उद्देश्य को प्रभावी करने के लिए आवश्यक या वांछनीय दिखाई दें।"

इन उपबन्धों को दृष्टि में रखते हुए मेरे विचार से अनुच्छेद 279 को समाविष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है और इसलिये मैं यह अनुरोध करता हूं कि स्थिति पर फिर विचार किया जाये और यदि संभव हो तो इस अनुच्छेद को बिल्कुल निकाल दिया जाये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपात-संबंधी अनुच्छेदों के अधीन यह एक सीधा-सादा अनुच्छेद है। जैसा कि मेरे मित्रों ने अभी बताया है, यह सच है कि अनुच्छेद 13 के अधीन अधिनियमों को बनाने के संबंध में उपबन्ध हैं किंतु मेरे विचार से यह न समझना चाहिये

कि आपात-काल में पूरा शासन-तंत्र विफल हो जायेगा और इसलिये इस अनुच्छेद में यह विशेष रूप से उपबंधित किया गया है कि आपात के उपस्थित होने पर भी राज्य के लिए अनुच्छेद 13 के अधीन किसी विधि को बनाने में कोई रुकावट न होगी। यह एक आशाप्रद उपबन्ध है और यह न बेकार है न निरर्थक। मेरे विचार से मसौदा-समिति से सतर्क होकर ये शब्द रखे हैं कि आपातकाल में भी राज्य यदि चाहें तो अनुच्छेद 13 के अधीन विधियों को प्रवर्तन में लाकर अपने कृत्यों का निर्वहन करते रहेंगे और विधियों को बनाने में उनके लिये किसी बात से रुकावट न होगी। यह एक आशाप्रद अनुच्छेद है क्योंकि अन्यथा आपात-काल में लोग साधारणतया यही समझेंगे कि सभी साधारण विधियां विफल हो जायेंगी और कोई भी विधि न बनाई जायेगी। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि आपात के उपस्थित होने पर भी यदि कोई राज्य चाहे तो अनुच्छेद 13 के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन कर सकता है। इस स्थिति में मेरे विचार से यह अनुच्छेद बहुत आशाप्रद तथा आवश्यक है और राज्यों में आपात के उपस्थित होने पर इसकी सार्थकता सिद्ध हो जायेगी। इस स्थिति में मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मैं इस बहस में भाग नहीं लेना चाहता था किन्तु मेरे मित्र श्री सिधवा ने मुझे इसके लिए विवश कर दिया, मुझे यह कहने के लिए क्षमा किया जाये कि वे इस अनुच्छेद के आशय को नहीं समझ पाये हैं। उसका आशय यह है कि आपातकाल में अनुच्छेद 13 के उपबन्ध निलम्बित हो जायेंगे। इस कथन का कोई अर्थ नहीं है कि इस अनुच्छेद से राज्यों को अनुच्छेद 13 के उपबन्धों के अनुसार शक्ति प्रयोग का अधिकार प्राप्त होता है। उसका यह आशय है कि वाक-स्वातंत्र्य और सम्मिलन-स्वातंत्र्य निलम्बित हो सकते हैं। यदि संविधान में अनुच्छेद 13 न होता तो राज्य वाक-स्वातंत्र्य और अन्य स्वातंत्र्यों को निर्बन्धित करने के लिए शक्ति-प्रयोग कर सकते। इसलिये अनुच्छेद 13 के होते हुए भी राज्यों के विधान मंडल लोगों के स्वातंत्र्य को निर्बन्धित करने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। अनुच्छेद 279 का यही अर्थ है।

***श्री आर.के. सिधवा:** जी नहीं।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद: मैं कह नहीं सकता। मसौदा-समिति अनुच्छेद 279 के उपबन्धों की व्याख्या करे, किन्तु मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि अनुच्छेद 279 का यह अर्थ है कि आपात-काल में अनुच्छेद 13 के होते हुए भी राज्यों के विधान मंडल वाक-स्वातंत्र्य को निर्बन्धित करने के लिए विधि बना सकते हैं। मेरा यह निर्वचन है। मैं कह नहीं सकता कि यह ठीक है या नहीं। यदि हम कोई राजनैतिक कार्य करते हैं तो उसके दो प्रभाव होंगे। उससे या तो मनुष्य का स्वातन्त्र्य विस्तृत होगा या निर्बन्धित होगा। इसके अतिरिक्त और किसी बात की संभावना नहीं है। मेरी यह धारणा है कि आपात काल में कार्यपालिका और विधान मंडल को मनुष्य के स्वातन्त्र्य को निर्बन्धित करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से केवल दो प्रश्न ऐसे उठाये गये हैं जिनका उत्तर देने की आवश्यकता है। मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका आशय यह है कि आपात काल

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में संसद ही मूलाधिकारों में परिवर्तन करे, न कि राज्य। यदि मेरे मित्र अनुच्छेद 13 पर दृष्टि डालें तो वे देखेंगे कि हमने यह उपबन्ध रखा है कि केन्द्र और प्रान्त दोनों मूलाधिकारों में परिवर्तन कर सकते हैं मगर शर्त यह है कि वे परिवर्तन तर्कसंगत हों। इसलिये साधारण काल में मूलाधिकारों के सम्बन्ध में विधि बनाने का प्राधिकार दोनों को प्राप्त है और कोई कारण नहीं है कि आपात-काल में राज्य इस प्राधिकार से वंचित किये जायें।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** किन्तु वे आपात-काल में निलम्बित हो जायेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** निलम्बन का उल्लेख दूसरे अनुच्छेद में है। इस अनुच्छेद में केवल यह कहा गया है कि अनुच्छेद 13 के होते हुए भी राज्य शक्ति प्रयोग कर सकता है जिसमें संसद् तथा प्रान्त दोनों सन्निहित हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** आपात-काल में भी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां। वह एक साधारण शक्ति है और अन्य मामलों के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त हो सकती है। अब आपात उपस्थित न हो तो इस विषय के सम्बन्ध में दोनों विधि बना सकते हैं। इसलिए मेरे विचार से इसके लिये कोई कारण नहीं है कि आपात काल में यह शक्ति उनसे ले ली जाये। इसके विपरीत मेरी यह धारणा है कि आपात के कारण भी इस प्रकार की शक्ति राज्य को दी जानी चाहिये।

जहां तक मेरे मित्र श्री कामत की इस आलोचना का सम्बन्ध है कि इस उद्देश्य के लिए आगे का अनुच्छेद 280 पर्याप्त है, मेरे विचार से यह सारी स्थिति का मिथ्या बोध है क्योंकि जब तक रूपभेद करने की शक्ति न दी जायेगी तब तक निलम्बन करने की शक्ति का कोई महत्व न होगा। अनुच्छेद 280 एक बिल्कुल भिन्न विषय के बारे में है और उसका इस अनुच्छेद से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अनुच्छेद जिस रूप में उपस्थित किया गया है उसी रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। संशोधन संख्या 235, जिसे प्रोफ़ेसर सक्सेना ने उपस्थित किया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3027 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 279 में 'the State as defined in that Part' (उस भाग में परिभाषित राज्य) शब्दों के स्थान में 'Parliament' (संसद्) शब्द रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 3027 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 279 में 'State' (राज्य) शब्द जहां दूसरी बार आया है वहां उसके स्थान पर 'Parliament' (संसद) शब्द रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 3027 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 279 में अन्त में आये हुए शब्द 'or to take any executive action' (अथवा कोई कार्यपालिका कार्य करने) तथा 'or to take' (अथवा करने) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** अब मैं अनुच्छेद 279 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 279 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 279 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 280

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 280 उठाते हैं।

संशोधन संख्या 3028—डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"वर्तमान अनुच्छेद 280 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये।

'280. Where a Proclamation of Emergency is in operation, the President may by order declare that the right to move any court for the enforcement of the rights concerned by Part III of this Constitution and all proceedings pending in any court for the enforcement of any right so conferred shall remain suspended for the period during which the Proclamation is in operation or for such shorter period as may be specified in the order.

(जहां कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है वहां राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा कि इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये आधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए, किसी न्यायालय के प्रचालन का अधिकार तथा किसी न्यायालय

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में इस प्रकार दिये गये किसी अधिकार को प्रवर्तित कराने के लिये लम्बित सब कार्यवाहियां उस कालावधि के लिए, जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहती है अथवा उससे छोटी ऐसी कालावधि के लिए, जैसी कि आदेश में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेगी।)

सभा यह देखेगी कि अनुच्छेद 280 की यह शब्दावली मूल अनुच्छेद की शब्दावली से अच्छी है। अनुच्छेद 280 के मूल मसौदे में यह उपबंधित था कि उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने पर अनुच्छेद 25 को निलम्बित करने वाला राष्ट्रपति का आदेश छह मास तक प्रवर्तन में रहे। अर्थात् निलम्बन की आवश्यकता न रहने पर भी बन्दिप्रत्यक्षीकरण आदि लेखों की प्रत्याभूति निलम्बित रहेगी। यह समझा गया है कि आवश्यकता न रहने पर यह प्रत्याभूति निलम्बित न रहनी चाहिये। वास्तव में स्थिति में ऐसा सुधार हो सकता है कि उद्घोषणा के प्रवर्तन में रहने पर भी प्रत्याभूति प्रभावी हो सकती है। इसलिये यह उपबंधित करने के लिये कि उद्घोषणा के अप्रवर्तित होने पर अथवा उसके अप्रवर्तित होने के पूर्व ही निलम्बन का आदेश अप्रभावी हो जायेगा, यह नया मसौदा सभा के सामने रखा जा रहा है और मुझे आशा है कि सभा उसे स्वीकार करने में किसी कठिनाई का अनुभव न करेगी।

***अध्यक्षः** श्री कामत, क्या आप संशोधन संख्या 3030 उपस्थित करना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 3030 का विकल्प उपस्थित करूंगा। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 280 में 'by order' (आदेश द्वारा) शब्दों के बाद 'and subject to the approval of a majority of the total membership of each House of Parliament' (संसद के प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत के अनुमोदन के अधीन) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

क्या मैं अपने अन्य संशोधनों को भी अभी उपस्थित कर दूं और उन पर बाद में बोलूं? प्रोफेसर सक्सेना का भी एक संशोधन है।

***अध्यक्षः** आप अपने संशोधन उपस्थित कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, आप की अनुमति से मैं अपने अन्य तीन संशोधनों को भी उपस्थित करता हूं। पहला इस प्रकार है:

"संशोधनों को सूची के संशोधन संख्या 3028 में प्रस्तावित अनुच्छेद 280 में 'enforcement of the rights conferred by Part III of this Constitution' (इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने) शब्दों के स्थान में 'enforcement of such of the rights conferred by Part III of

this Constitution as may be specified in that order' (इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये अधिकारों में से ऐसों को प्रवर्तित कराने के लिए जैसे कि इस आदेश में वर्णित हों) शब्द रखे जायें।"

दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 3028 में प्रस्तावित अनुच्छेद 280 में 'any right' (किसी अधिकार) शब्दों के स्थान पर 'any such right' (किसी ऐसे अधिकार) शब्द रखे जायें।"

अन्तिम संशोधन इस प्रकार है:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3028 में प्रस्तावित अनुच्छेद 280 में अन्त में आये हुए 'the order' (आदेश) शब्दों के स्थान पर 'that order' (उस आदेश) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, यदि सभा इन संशोधनों को स्वीकार कर लेगी तो प्रस्तावित अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:–

"जहां कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है वहां राष्ट्रपति आदेश द्वारा संसद् के प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत के अनुमोदन के अधीन, घोषित करेगा कि इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये अधिकारों में से ऐसों को प्रवर्तित कराने के लिए जैसे कि इस आदेश में वर्णित हों, किसी न्यायालय के प्रचालन का अधिकार तथा किसी न्यायालय में इस प्रकार दिये गये किसी ऐसे अधिकार को प्रवर्तित कराने के लिए लम्बित सब कार्यवाहियां उस कालावधि के लिए, जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहती है, अथवा उससे छोटी ऐसी कालावधि के लिए, जैसी कि उस आदेश में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेगी।"

श्रीमान्, क्या मैं बाद को उस समय बोलूंगा जब प्रोफेसर सक्सेना अपना संशोधन उपस्थित कर चुकेंगे?

***अध्यक्ष:** आप अभी बोल सकते हैं। प्रोफेसर सक्सेना को केवल एक संशोधन उपस्थित करना है। आप पहले अपना भाषण समाप्त कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** अच्छी बात है, श्रीमान् मैं आपको धन्यवाद देता हूं। इस अनुच्छेद पर सभा को कई दृष्टिकोण से विचार करना है। सबसे आधारभूत प्रश्न तथा इस विषय का मूल प्रश्न यही है कि संविधान के भाग 3 में जिन मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है वे निलम्बित हो जायेंगे। भाग 3 में किन मूलाधिकारों का वर्णन है? जहां तक मैं समझ पाता हूं ये अधिकार किसी व्यक्ति के अन्य व्यक्ति के सम्बंध में अथवा राज्य के सम्बन्ध में अधिकार हैं। क्या यह उचित है कि आपात की उद्घोषणा के प्रवर्तन में आने पर ये मूलाधिकार निलम्बित हो जायें? मैंने संसार के प्रमुख संविधानों का अध्ययन किया है, यद्यपि सम्भव है उतना सावधानी से न किया हो जितनी सावधानी से डॉ. अम्बेडकर ने किया है, किन्तु किसी भी संविधान में मुझे इतना व्यापक और प्रभावशाली उपबन्ध नहीं दिखाई दिया। मैं इंग्लिस्तान के संविधान की ओर संकेत करता हूं, यद्यपि अलिखित

[श्री एच.वी. कामत]

संविधान होने के कारण उसके सम्बन्ध में बहुत नहीं कहा जा सकता है। पिछले एक अवसर पर डॉ. अम्बेडकर ने अथवा श्री कृष्णमाचारी ने 'साम्राज्य प्रतिरक्षा-अधिनियम' की चर्चा की, जिसे इंग्लिस्तान की संसद् ने 1919 अथवा 1920 में पारित किया था। यह सच है कि इस अधिनियम के अधीन वैयक्तिक स्वातंत्र्य के कुछ अधिकार निलम्बित किये गये थे किन्तु कार्यपालिका को अपनी शक्ति के दुरुपयोग से रोकने के लिए इस अधिनियम में एक बहुत ही सुन्दर उपबन्ध रख गया था। इंग्लिस्तान में 1920 के आपातशक्ति विधेयक की यह कहकर निन्दा की गई थी कि वह कांसलरी के काल के बाद पहला दमन सम्बन्धी विधेयक है। उस समय यद्यपि उसे काला विधेयक कहा गया था किन्तु उसमें भी कई ऐसे रक्षा कवच थे जिनसे अधिनियम के प्रवर्तन से अन्यथा जो कठोरता तथा अत्याचार होते उनकी सम्भावना कम हो गई। मैं इन रक्षा-कवचों में से कुछ को पढ़कर सुनाऊंगा:

"जब सम्राट आपात की उद्घोषणा करेगा तो इसकी सूचना संसद् को तुरन्त ही दी जायेगी कि वह किस कारण निकाली गई है और यदि उस समय संसद् पांच दिन से अधिक समय के लिए स्थगित या सत्रावसित हुई हो तो संसद के पांच दिन के अन्दर समवेत होने के सम्बन्ध में उद्घोषणा निकाली जायेगी और तदनुसार संसद उस उद्घोषणा में निश्चित तिथि को समवेत होगी और उसी प्रकार समवेत रहेगी तथा कार्य करती रहेगी जैसे वह उसी दिन के लिए स्थगित अथवा सत्रावसित हुई हो।

* * * * * * *

इस प्रकार जो भी विनियम बनाये जायें वे यथा सम्भव शीघ्र संसद के सामने रखे जायेंगे और इस प्रकार रखे जाने के पश्चात् सात दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेंगे जब तक कि उनको जारी रखने के सम्बन्ध में दोनों सदन किसी संकल्प को पारित न कर लें।"

यह इंग्लिस्तान का उदाहरण है। संयुक्त राज्य अमरीका में, जहां से हमने बहुत कुछ लिया है, केवल एक मूलाधिकार निलम्बित किया जा सकता है, यह मूलाधिकार बन्दिप्रत्यक्षीकरण का अधिकार है और एक महत्वपूर्ण अधिकार है। अमरीका के संविधान में यह उपबंधित है कि जब तक बलवा या आक्रमण न हो और सार्वजनिक सुरक्षा के हित में यह आवश्यक न हो, तब तक इस अधिकार को निलिम्बत न किया जायेगा। किन्तु इस सम्बन्ध में भी पर्याप्त रक्षा-कवच है, अर्थात इस अधिकार के निलम्बन को आज्ञा केवल कांग्रेस दे सकती है, अर्थात सीनेट और हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव्स मिलकर ही इसकी आज्ञा दे सकते हैं। किन्तु उच्चतम न्यायालय ही यह कह सकता है कि इस अधिकार को जिस स्थिति में निलम्बित किया जा सकता है वह स्थिति उत्पन्न हो गई है या नहीं। गिलिगत के प्रख्यात मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि केवल आक्रमण की आशंका से सैनिक विधि प्रवर्तन में नहीं आ सकती है, उसकी वास्तव में आवश्यकता होनी चाहिये और आक्रमण वास्तविक होना चाहिये। कल मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया था कि बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक विद्रोह की केवल आशंका मात्र

न होनी चाहिये। अमरीका के संविधान में यह उपबंधित है। इसके अतिरिक्त अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि जो कुछ आक्रमण के लिए कहा जा सकता है वह बलवे के लिए भी कहा जा सकता है। उसने यह कहा कि संविधानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बन्दिप्रत्यक्षीकरण का अधिकार तब तक निलम्बित न किया जायेगा जब तक कि बलवे अथवा आक्रमण की दशा में राज्य की सुरक्षा के हित में इसकी वास्तव में आवश्यकता न हो। वह केवल विधान-मंडल की घोषणा से सुव्यवस्था के उद्देश्य से निलम्बित न किया जायेगा और इसका निर्णय न्यायालय करेगा कि वह कब निलम्बित किया जाये। मुझे खेद है कि यद्यपि डॉ. अम्बेडकर और उनकी विचारधारा के अन्य लोग गर्व से यह कहते हैं कि उन्होंने इंग्लिस्तान और अमरीका के संविधानों से अमुक-अमुक बातें ली हैं, किन्तु उन्होंने हमारे संविधान में वहां के कुछ रक्षा कवचों को स्थान देने का प्रयास नहीं किया। यदि अब देर नहीं हो गई है तो मैं डॉ. अम्बडेकर तथा उनके बुद्धिमान सहकारियों की टोली से पूछता हूं कि वे इस विषय की सावधानी से परीक्षा करें और इस पर विचार करें कि अनुच्छेद 280 के अधीन कार्यपालिका को जो शक्ति प्रदान की गई है उसके दुरुपयोग को रोकने के लिए क्या कुछ रक्षा कवच उपबंधित नहीं किये जा सकते हैं।

श्रीमान्, जहां तक इस अनुच्छेद के विवरण का सम्बन्ध है, इस अनुच्छेद में अनुच्छेद 13 द्वारा प्रत्याभूत मूलाधिकारों का निर्देश है। सभा इस ओर ध्यान देगी कि भाग 3 में कई प्रकार के मूलाधिकारों का वर्णन है। वे एक समान नहीं हैं। उनका रूप तथा उनका विषय भिन्न है और वे जिन विषयों के बारे में हैं उनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 11 में.....

***अध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य महोदय इस भाग के प्रत्येक खण्ड और उपखण्ड की चर्चा करना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** जी नहीं, केवल उतनी ही चर्चा करना चाहता हूं जितनी मेरे तर्क के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक है।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से सदस्य मूलाधिकारों से परिचित हैं और माननीय सदस्य महोदय सामान्यत जो बातें कहना चाहे उनमें मूलाधिकारों का विवरण न दें।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं आपके निर्णय का अनुकरण करूंगा। मैं केवल उन अनुच्छेदों की चर्चा कर रहा हूं जो मेरे संशोधनों से सम्बंधित हैं। आज जो संशोधन उपस्थित किया गया है वह संशोधन संख्या 1 है। वह एक नवीन संशोधन है और उसमें मैंने यह कहा है कि 'अधिकारों को प्रवर्तित कराने' शब्दों के स्थान पर 'इस संविधान के भाग 2 द्वारा दिये गये अधिकारों में से ऐसों को प्रवर्तित कराने के लिए जैसे कि इस आदेश में वर्णित हो' शब्द रखे जायें।

मैंने यह संशोधन इस कारण उपस्थित किया है कि अनुच्छेद 13 द्वारा कुछ ऐसे अधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है जो किसी भी दशा में, गम्भीर आपात की

[श्री एच.वी. कामत]

दशा में भी, प्रतिसंहृत नहीं हो सकते है। अनुच्छेद 13 द्वारा कुछ ऐसे अधिकार प्रदान किये गये हैं जिनका न निराकरण हो सकता है न न्यूनन अथवा शून्यन ही, जैसे कि अनुच्छेद 11, जिसके द्वारा अस्पृश्यता का शून्यन किया गया है। यह एक बहुत महत्वपूर्ण अधिकार है। क्या इसका अर्थ यह है कि आपात उपस्थित होने पर हम प्रचलित निषेधों की आज्ञा दे देंगे और चाहे जो भी व्यक्ति जिस रूप में भी अस्पृश्यता को लागू करे हम उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही न करेंगे? इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार भी हैं, किन्तु जैसा कि मैं अभी कह चुका हूं, मैं विवरण देकर आप के निर्णय का उल्लंघन नहीं करना चाहता। मैं केवल अस्पृश्यता सम्बन्धी, शिक्षा-सम्बन्धी तथा सांस्कृतिक अधिकारों की चर्चा करूंगा। यदि सभा के सदस्य उनका ध्यान पूर्वक अध्ययन करेंगे और डॉ. अम्बेडकर इस विषय पर विचार करेंगे तो उन्हें विदित जायेगा कि कुछ अधिकार ऐसे हैं जो किसी भी दशा में निलम्बित नहीं किये जा सकते, चाहे कितना ही गंभीर आपात क्यों न उपस्थित हो जाये। इसलिये मैंने इस अनुच्छेद को इस प्रकार संशोधित करने का प्रयास किया है कि आदेश में उन अधिकारों का उल्लेख रहे जिनका निराकरण, न्यूनन अथवा निलम्बन करने की आवश्यकता हो।

अन्य दो संशोधन केवल शाब्दिक संशोधन हैं और मैं उनके बारे में नहीं बोलना चाहता। मैं यह चाहता हूं कि मसौदा-समिति उन पर बुद्धिमता से विचार करे क्योंकि मैं समझता हूं कि मैं सम्भवतः उतना बुद्धिमान नहीं हूं जितने कि उसके सदस्य।

संशोधनों को छपी हुई सूची का संशोधन संख्या 3030 एक सारवान संशोधन है और उसका आशय यह है कि सभी मूलाधिकारों को, अथवा उनमें से किसी को निलम्बित करने वाले राष्ट्रपति का आदेश का अनुमोदन संसद करे। हम इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 275 और 278 में उपबन्ध रख चुके हैं। अनुच्छेद 278 में यह निर्धारित किया गया है कि जो भी उद्घोषणा की जायेगी, वह अनुमोदन के लिए संसद् के सामने रखी जायेगी। अनुच्छेद 275 के खण्ड (2) (ख) और (ग) में यह स्पष्ट शब्दों में निर्धारित है कि उद्घोषणा अनुमोदन के लिये संसद् के सामने रखी जायेगी। क्या इसका अर्थ यह है कि उद्घोषणा के संसद् द्वारा अनुमोदित होने पर राष्ट्रपति आदेश निकाल कर जो चाहे कर सकता है? यदि यह बात है तो यह बहुत ही दूषित अनुच्छेद है। मूलाधिकारों का निलम्बित होना कोई साधारण बात नहीं है। वह एक गम्भीर बात है। मैं तो यहां तक कहूंगा कि राज्य में जो गम्भीर से गम्भीर आपात उपस्थित हो उससे भी उसकी गम्भीरता अधिक है। क्या उस स्थिति के लिए राष्ट्रपति को हमने यह शक्ति दी है कि वह आदेश निकालकर घोषित करे कि अनुच्छेद 13 द्वारा प्रदत्त मूलाधिकार निलम्बित किये जाते हैं? मुझे आशा है कि यह बात नहीं है। मुझे आशा है कि सभा का उद्देश्य यह नहीं है। चाहे यह अनुच्छेद आज सभा के सामने जिस रूप में भी रखा गया हो परन्तु मुझे आशा है कि वह उसे जल्दी में स्वीकार न करेगी, बल्कि इसके विपरीत उस पर गम्भीरता से विचार करेगी। मुझे आशा है कि सभा इस अनुच्छेद पर अधिक विस्तृत रूप में विचार करेगी और उसमें कुछ अधिक रक्षा-कवच प्रविष्ट करने के हेतु उसे संशोधित कर लेगी। मैंने केवल इस उद्देश्य से अपना संशोधन उपस्थित किया है कि राष्ट्रपति इस सम्बन्ध में, अर्थात मूलाधिकारों को निलम्बित करने के सम्बन्ध में, जो भी आदेश निकाले वह आपात की उद्घोषणा के समान

संसद् के सामने रखा जाये। यदि संसद् उसका अनुमोदन करे तो ठीक है, किन्तु यदि वह उसका अनुमोदन न करे तो वह प्रवर्तन में न आना चाहिये। यद्यपि हम यह आशा करते हैं, और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हमारा राष्ट्रपति बुद्धिमान हो किन्तु, जैसाकि मैं कह चुका हूं, हमारे संविधान में इसकी प्रत्याभूति नहीं है कि राज्य के सर्वोच्च पद पर मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद की कल्पना का कोई दार्शनिक सम्राट निर्वाचित होकर आसीन होगा। मनुष्य की जो कमजोरियां हैं वे रहेंगी ही। यदि राष्ट्रपति यह आदेश निकाल देगा कि सभी मूलाधिकार निलम्बित किये जाते हैं तो प्रस्तावित अनुच्छेद में कोई ऐसा उपबन्ध नहीं है जिसके अधीन संसद इस विषय पर विचार कर सके। मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना ने इससे कुछ अधिक कठोर संशोधन की सूचना दी है। मुझे केवल इससे संतोष हो जायेगा कि यदि संसद् के समवेत होने के पूर्व राष्ट्रपति कोई आदेश निकाले तो वह संसद के सामने रखा जाना चाहिये ताकि वह उस पर विचार-विमर्श कर सके और उसे स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सके। श्रीमान्, हम हमेशा यही कहते रहते हैं कि संकटपूर्ण स्थिति उपस्थित है। इटली की संविधान-सभा के सम्मुख भी, जो दो वर्ष पूर्व द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् समवेत हुई थी, इससे कम संकटपूर्ण स्थिति उपस्थित न थी। राज्य में बलवा होने की आशंका थी और साम्यवादी राज्य के विरुद्ध उठ खड़े हो रहे थे। इटली रूसी गुट और पश्चिमी गुट के बीच में एक सीमावर्ती राज्य था और इसलिये उसे बहुत दबाव सहन करना पड़ता था। इस पर भी इटली की संविधान-सभा, जिसने 1947 में अपना संविधान अंगीकार किया, इतने आगे नहीं बढ़ी जितने आगे हम आज बढ़ रहे हैं। उसने क्या किया? उसको एक बहुत ही संकटपूर्ण स्थिति का सामना करना था—पड़ौस में साम्यवादी थे और राज्य में बलवे का डर था। हमने हाल ही में समाचार पत्रों में पढ़ा था कि जब अटलांटिक संधि का अनुसमर्थन हुआ था तो इटली की विधान-सभा में अर्थात् चैम्बर आफ डिपुटीज में झगड़ा-फसाद हो गया। राज्य में गंभीर संकट उपस्थित होने पर उसका सामना करने के लिए वहां की संविधान सभा ने एक अनुच्छेद तो स्वीकार किया किन्तु उसमें यथोचित रक्षा-कवच रख दिये। वहां के संविधान का वह अनुच्छेद इस प्रकार है:

> "जब असाधारण स्थिति उपस्थित होने पर सरकार को इसकी आवश्यकता पड़े कि वह अपने दायित्व से ऐसी कार्यवाही करे जिसका विधि का प्रभाव हो तो सरकार को उसी दिन (इंग्लिस्तान के अधिनियम में यह उपबन्ध है कि संसद् का पांच दिन के अन्दर आह्वान किया जाना चाहिये) उसे विधि का रूप देने के लिए चैम्बर के सामने रखना चाहिये। किन्तु यदि वह विघटित हो गया हो तो इस उद्देश्य से उसका आह्वान किया जाना चाहिये और उसे पांच दिन के अन्दर समवेत होना चाहिये। इन आदेशों को यदि, प्रकाशित होने के 60 दिन के अन्दर, विधि का रूप नहीं दिया गया हो तो ये जारी होने के दिन से ही अप्रभावी हो जायेंगे। किन्तु चैम्बर ऐसे आदेशों से उद्भूत राजनैतिक सम्बन्धों का विनियमन कर सकते हैं, जिनको विधि का रूप न दिया गया हो।"

यहां भी चैम्बर को ही शक्ति प्रदान की गई है।

[श्री एच.वी. कामत]

मैं सभा के सामने इंग्लिस्तान, अमरीका और इटली के संविधानों के उदाहरण रख चुका हूं। मैं अन्य संविधानों के उदाहरण भी दे सकता हूं किन्तु अब मैं अधिक उदाहरण न दूंगा। मुझे किसी भी संविधान में इतना व्यापक उपबन्ध नहीं दिखाई दिया जितना कि इस अध्याय का विचाराधीन उपबन्ध है।

मुझे एक बात और कहनी है और वह यह है। हम अनुच्छेद 278 में उपबंधित कर चुके हैं कि राज्यपाल से प्रतिवेदन न मिलने पर भी राष्ट्रपति उद्घोषणा जारी कर सकता है। मेरे विचार से अनुच्छेद 275 के अधीन यदि सारे भारत पर अथवा उसके किसी भाग पर बाहर से आक्रमण होने की अथवा वहां आभ्यन्तरिक अशांति की आशंका हो तो राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा कर सकता है। यदि बिना राज्यपाल से प्रतिवेदन प्राप्त हुए ही राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा करता है और उसके पश्चात् आवश्यक कार्यवाही करके मूलाधिकारों को निलम्बित कर देता है तो एक गम्भीर संकट उपस्थित हो सकता है। किसी राज्य का राज्यपाल अथवा राज्य प्रमुख अथवा वहां के अन्य अधिकारी यह समझेंगे कि उनसे कुछ नहीं पूछा गया है और उनकी उपेक्षा की गई है, जिसके फलस्वरूप बहुत कलह उत्पन्न हो सकता है। ईश्वर न करे कि ऐसा हो, किन्तु राज्य के अधिकारी राजप्रमुख, राज्यपाल, उसके मंत्री अथवा अन्य प्रशासन केन्द्रीय सरकार अथवा राष्ट्रपति से असहयोग करने लगेंगे और आपात की उद्घोषणा के अधीन जो आदेश निकाले गये हों उन्हें स्वीकार न करेंगे और प्रवर्तन में नहीं लायेंगे। मुझे विश्वास है कि हममें से कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता कि इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो। इसलिये इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुये, तथा इन सम्भावनाओं और संकटों पर गम्भीरता से विचार करने के पश्चात्, मैंने यह अनुभव किया कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3028 के रूप में जो अनुच्छेद उपस्थित किया गया है (यद्यपि दुर्भाग्य से उसकी भाषा दूषित है), अर्थात् अनुच्छेद 280 के परिणामस्वरूप मेरे विचार से लोगों के स्वातंत्र्य ही गम्भीर संकट में न पड़ जायेंगे बल्कि संघागों की शक्तियां भी संकट में पड़ जायेंगी। मैं विनम्रता से तथा पूरे जोर से फिर यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस सभा को इस अनुच्छेद पर ठंडे दिल से विचार करना चाहिये और इसमें ऐसे रक्षा-कवचों को उपबंधित कर देना चाहिये जिनसे कार्यपालिका की शक्ति का दुरुपयोग न हो सके क्योंकि मुझे विश्वास है कि यदि यह अनुच्छेद उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया जिस रूप में यह सभा के सामने उपस्थित किया गया है तो कार्यपालिका की शक्ति का अवश्य ही दुरुपयोग होगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3028 में प्रस्तावित अनुच्छेद 280 में 'the President may by order declare' (राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा) शब्दों के स्थान पर 'the Parliament may by law provide' (संसद विधि द्वारा उपबन्धित कर सकेगी) शब्द रखे जायें और अन्त में आये हुए शब्द 'the Order' (आदेश) के स्थान पर 'that law' (उस विधि) शब्द रखे जायें।"

यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो यह अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"जहां कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है वहां संसद् विधि द्वारा उपबंधित कर सकेगी कि इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए किसी न्यायालय के प्रचालन का अधिकार, तथा किसी न्यायालय में इस प्रकार दिये गये अधिकार को प्रवर्तित कराने के लिए लम्बित सब कार्यवाहियां, उस कालावधि के लिए जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहती है, अथवा उससे छोटी ऐसी कालावधि के लिये, जैसी कि उस विधि में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेंगी।"

मेरी यह प्रबल इच्छा है कि यह अनुच्छेद ही निकाल दिया जाये क्योंकि इससे पहले के जिस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं अपना विरोध प्रकट कर चुका हूं उससे भी यह अनुच्छेद अधिक व्यापक है। उस अनुच्छेद से अनुच्छेद 13 द्वारा प्रत्याभूत स्वतंत्रताओं का अपहरण नहीं होता। यह अनुच्छेद उससे कहीं आगे बढ़ गया है। वास्तव में संविधान में नागरिकों की जो संविधानिक स्वतंत्रतायें उपबन्धित हैं उनका इससे निराकरण हो जाता है। मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 25 की ओर दिलाता हूं जिसमें कहा गया है कि:

"इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रचालित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।"

जब कभी इन अधिकारों में हस्तक्षेप हो, उच्चतम न्यायालय के सम्मुख उस मामले को रखा जा सकता है। इसका दूसरा खण्ड इससे भी महत्वपूर्ण है, उसमें कहा गया है कि:

"इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसे निर्देश या आदेश या लेख, जिनके अन्तर्गत बन्दिप्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।"

खण्ड (3) में कहा गया है:

"संसद् विधि द्वारा किसी दूसरे न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर उच्चतम न्यायालय द्वारा खण्ड (2) के अधीन प्रयोग की जाने वाली सब अथवा किसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी।"

खण्ड (4) में कहा गया है:

"इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबंधित अवस्था को छोड़कर इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलम्बित न किया जायेगा।"

इस अनुच्छेद द्वारा हम नागरिकों की स्वतंत्रताओं के बारे में उच्चतम न्यायालय की शक्तियों पर आघात कर रहे हैं। हमने केवल अनुच्छेद 13 द्वारा प्रत्याभूत स्वतंत्रताओं के सम्बन्ध में बल्कि सभी अधिकारों के सम्बन्ध में और साथ ही नागरिकों के बन्दिप्रत्यक्षीकरण का लेख प्राप्त करने के अधिकार के सम्बन्ध में

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

भी उसकी शक्ति पर आघात कर रहे हैं। जब मैंने यह अनुच्छेद पढ़ा तो मुझे 1942 की महान क्रांति स्मरण हो आई, जब भारत ने स्वातंत्र्य संग्राम छेड़ा था और हम केवल ऐसे काल्पनिक आरोपों के आधार पर काल-कोठरियों में बन्द कर दिये गये थे जैसे सम्राट के विरुद्ध संग्राम करना, इत्यादि। उस समय भी ब्रिटिश सरकार ने दंड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 491 में प्रत्याभूत उच्च-न्यायालयों की बन्दिप्रत्यक्षीकरण के लेखों को निकालने की शक्ति को निलम्बित नहीं किया। मुझे स्मरण है कि कई बन्दियों ने बन्दिप्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी धारा के अधीन आवेदन-पत्र प्रस्तुत किये और वे उच्च-न्यायालय के सामने उपस्थित हुए तथा उनके मामलों की सुनवाई हुई। किन्तु स्वतन्त्र भारत में हम इस आधारभूत अनुच्छेद के निलम्बन के लिए उपबन्ध रख रहे हैं। यदि यह अनुच्छेद स्वीकार कर लिया गया तो दंड प्रक्रिया-संहिता की धारा 491 अप्रभावी हो जायगी। यदि कोई युद्ध दस वर्ष तक रहा तो क्या उस बीच किसी व्यक्ति को बन्दिप्रत्यक्षीकरण के लेख के लिए उच्चतम-न्यायालय के सामने आवेदन-पत्र रखने का अधिकार न होगा? इससे नौकरशाही को किसी भी व्यक्ति को अकारण गिरफ्तार करने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। कोई व्यक्ति न्याय के लिये उच्चतम न्यायालय के सामने न जा सकेगा। मेरे विचार से किसी भी आपात के उपस्थित होने पर उच्चतम न्यायालय को न्याय करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिये। आखिर इस संविधान के अधीन जिस उच्चतम न्यायालय का गठन किया जायेगा, उसकी अध्यक्षता मुख्य न्यायाधीश करेगा और मुख्य न्यायाधीश को राष्ट्रपति कार्यपालिका के परामर्श से नियुक्त करेगा। इसके अतिरिक्त अन्य न्यायाधीश भी प्रख्यात व्यक्ति होंगे और बहुत कुछ इसी प्रकार नियुक्त किये जायेंगे। क्या आपात के समय इस प्रकार के सज्जनों का विश्वास नहीं किया जा सकता? यह मेरी समझ में नहीं आता कि हम कार्यपालिका का कैसे विश्वास कर सकते हैं क्योंकि वह तो नागरिकों के स्वातंत्र्य को भी कुचल सकती है। यह मेरी समझ में आता है कि आपातकाल के लिये रक्षा-कवच रखे जाने चाहियें किन्तु यह समझ में नहीं आता कि नागरिकों की स्वतंत्रता का पूर्णतया अपहरण क्यों किया जाये। संसार के किसी भी संविधान में मुझे ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। इसलिये मैं यह आग्रह करता हूं कि इस अनुच्छेद को संविधान से निकाल देना चाहिये किन्तु यदि यह सम्भव न हो तो मेरा संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये, जिसके अधीन संसद् किसी भी ऐसी विधि को बना सकती है जो आपात के लिये आवश्यक हो। राष्ट्रपति आदेश दे सकता है कि उद्घोषणा निकाली जाये और इसके पश्चात् संसद् कार्यपालिका का समर्थन कर सकती है। मेरी समझ में नहीं आता कि संसद् को आपात सम्बन्धी विधियों का अधिकार प्रदान करने में क्या हानि है। केवल राष्ट्रपति को ही यह शक्ति क्यों प्राप्त हो जबकि इसका अर्थ यह है कि यह शक्ति कार्यपालिका को प्राप्त होगी? संसद् को यह कहने का अधिकार होना चाहिये कि आपात-काल में किस प्रकार की कार्यवाही की जाये। मेरे विचार से इस अनुच्छेद की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यदि इसकी आवश्यकता समझी गई तो मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाना चाहिये और संसद को आपात-काल में भी हमारे स्वातंत्र्य को सुरक्षित करने का अधिकार दिया जाना चाहिये। हमें किसी के लिये यह कहने की गुंजाइश न रखनी चाहिये कि हमने अपनी सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संसद का अविश्वास किया और एक व्यक्ति को शक्ति प्रदान कर दी।

मेरे मित्र श्री कामत ने यह दिखाने के लिए कई अनुच्छेदों के उद्धरण सुनाये कि तेरहवें अध्याय को पूर्णतया निलम्बित करने में कितनी मूर्खता है। मुझे देख कर यह आश्चर्य हुआ कि मसौदा-समिति इसे आवश्यक समझती है। इस अध्याय में कुछ ऐसे अनुच्छेद हैं जिनका आपात से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्हें निलम्बित क्यों किया जाये? यदि यह अनुच्छेद प्रवर्तन में आया तो विभेद भी बरता जा सकता हैं इससे हमने नागरिकों को जो मूलाधिकार प्रदान किये हैं उनमें सन्निहित सिद्धांत का ही खण्डन हो जायेगा। हमने नागरिकों के बीच भेदभाव को निषिद्ध ठहराया है और अस्पृश्यता आदि के सम्बन्ध में भी सम्बन्ध रखे हैं। मेरे विचार से इस अनुच्छेद का मसौदा बनाने में स्थिति पर यथोचित विचार नहीं किया गया और वह सावधानी से तैयार नहीं किया गया। मैं कह नहीं सकता कि डॉ. अम्बेडकर इस उपबन्ध का समर्थन किस तर्क से कर सकते हैं। पिछले अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैंने जो संशोधन उपस्थित किया था उसके बारे में उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था कि सभी राज्यों के विधान-मंडलों को अनुच्छेद 13 का खण्डन करने वाली विधियों को बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। यह समझ में आ सकता है। मैं यह चाहता था कि यह शक्ति संसद् को प्रदान की जाये। उन्होंने कहा कि यह शक्ति राज्यों को भी प्राप्त होनी चाहिये। किन्तु इस अनुच्छेद में यह शक्ति, अर्थात् आदेश देने की शक्ति, केवल राष्ट्रपति को दी गई है और राज्यों का प्रश्न ही नहीं उठाया गया है। मैं केवल यह चाहता हूं कि यह कार्य संसद विधि द्वारा करे। आप राष्ट्रपति को एक स्वेच्छाचारी शासक क्यों बनाना चाहते हैं? यदि मेरा सीधा-सादा संशोधन स्वीकार न किया गया और लोगों के मूलाधिकार सुरक्षित न किये गये तो उनके हृदय में संविधान सभा के प्रति तथा उसके बनाये हुए संविधान के प्रति, अधिक आदर-भाव न रह जायेगा क्योंकि इस अनुच्छेद से हमारे स्वातंत्र्य के मूल पर ही कुठाराघात होता है। इसलिये इसे हमारे संविधान में स्थान न देना चाहिये अथवा कम से कम मेरे प्रस्तावनानुसार संशोधित कर देना चाहिये।

***अध्यक्षः** पंडित कुंजरू ने अनुच्छेद 280 के सम्बन्ध में एक संशोधन की सूचना दी है। वह छपी हुई अनुपूरक सूची का संशोधन संख्या 211 है।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहारः मुस्लिम): श्रीमान्, मेरा भी एक संशोधन है।

***अध्यक्षः** वह काहे के बारे में है?

***श्री तजम्मुल हुसैनः** वह अनुच्छेद को निकालने के सम्बन्ध में है।

***अध्यक्षः** वह निराकरण मूलक है। आप प्रस्ताव के विरुद्ध मत दे सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, कल आपने एक ऐसे प्रस्ताव को उपस्थित करने की आज्ञा दी थी जिससे एक अनुच्छेद का निराकरण होता था।

***अध्यक्षः** वह इसलिये दी थी कि मसौदा-समिति ने ही उसे उपस्थित किया था।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे विचार से नियमों का सब पर समान प्रभाव होना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मसौदा-समिति को किसी अनुच्छेद को निकालने का प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार है। सदस्य इस प्रकार के प्रस्ताव को संशोधन के रूप में उपस्थित नहीं कर सकते।

डॉ. कुंजरू, क्या आप अपना संशोधन उपस्थित करना चाहते हैं?

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** जी हां, श्रीमान्। मैं प्रस्ताव यह उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3028 में प्रस्तावित अनुच्छेद 280 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:–

'280. Where a Proclamation of Emergency is in operation the President may, by order, declare that the right to move any court for the enforcement of any of the rights conferred by articles 13, 14, 15, 16 and 24 of this Constitution and all proceedings pending in any court for the enforcement of any such rights shall remain suspended for the period during which the Proclamation is in operation or for such period as may be specified in the order."

Suspension of the enforcement of certain fundamental rights during Emergencies.

(जहां कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है वहां राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा कि इस संविधान के अनुच्छेद 13, 14, 15, 16 और 24 द्वारा दिये गये अधिकारों में से किसी अधिकार को प्रवर्तित कराने के लिए किसी न्यायालय के प्रचलन का अधिकार तथा किसी न्यायालय में इस प्रकार के किन्हीं अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए लम्बित सब कार्यवाहियां उस कालावधि के लिए, जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहती है अथवा ऐसी कालावधि के लिये, जैसी कि आदेश में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेंगी।)

इस संशोधन का उद्देश्य बहुत सीधा-सादा है। डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है वह सभी मूलाधिकारों के बारे में है। मैं यह चाहता हूं कि अनुच्छेद 280 का प्रवर्तन कुछ ही अधिकारों तक सीमित रहे। यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रपति के आपात की उद्घोषणा निकालने के पश्चात् सभी मूलाधिकार निलम्बित कर दिये जायें। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति के चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो, किसी होटल में टिकने अथवा भोजनालय में जाने अथवा सार्वजनिक कुंवे से पानी निकालने के अधिकार को लीजिये। क्या जब तक आपात की घोषणा प्रवर्तन में रहेगी, यह अधिकार निलम्बित रहेगा? उद्देश्य केवल यह है कि जहां तक वाद्स्वातंत्र्य के अधिकार अथवा संस्था बनाने के अधिकार अथवा शांतिपूर्वक सम्मिलन के अधिकार का सम्बन्ध है वह जब तक आपात की उद्घोषणा प्रवर्त में रहे तब तक देश के न्यायालयों द्वारा प्रयोग में न आना चाहिये। इस विषय के सम्बन्ध में मैं डॉ. अम्बेडकर के मत से पूर्णतया सहमत नहीं हूं। मैं उनके आलोचकों के कई विचारों से सहमत हूं, किन्तु मैं यह समझता हूं कि उनका

उद्देश्य यह है कि गम्भीर संकट उपस्थित होने पर सुव्यवस्था स्थापित करने में राज्य के मार्ग में रस्मी बातों से रुकावट न पैदा होनी चाहिये। किन्तु देश में अशान्ति समाप्त करने के लिए अथवा बाह्य आक्रमण का सामना करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि लोगों के सभी मूलाधिकारों का अपहरण किया जाये। केवल यह आवश्यक है कि संविधान में अधिकारों की प्रत्याभूति होते हुए भी उनमें से ऐसे अधिकार विधि द्वारा प्रयोग में न आने चाहियें जिनके अबाध-प्रयोग से शांति की पुनर्स्थापना के मार्ग में कठिनाइयां उठ खड़ी हों। मेरे विचार से यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो इस सीमित उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी। मेरी समझ से इसकी आवश्यकता नहीं है कि इस अनुच्छेद की परिधि इससे अधिक विस्तृत की जाये। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो कितनी ही गम्भीर स्थिति क्यों न उत्पन्न हो जाये, राज्य को उस पर काबू पाने के लिए पर्याप्त शक्ति प्राप्त होगी। किसी भी स्थिति में सभी मूलाधिकारों को निलम्बित करने की न तो आवश्यकता ही है और न उन्हें निलम्बित करना उचित ही है। यदि यह किया गया तो यह एक खेदजनक बात होगी। मेरे संशोधन से कार्यपालिका को संकट-काल के प्रयोजनों के लिए सभी आवश्यक शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं, और इसलिये मुझे आशा है कि सभा उसे स्वीकार करेगी।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त: जनरल): श्रीमान्, इसे दृष्टि में रखते हुए कि मसौदा-समिति की इच्छानुसार सभा अनुच्छेद 279 को स्वीकार कर चुकी है, मेरे विचार से अनुच्छेद 280 को पारित करने से एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। सभा भविष्य की सरकारों को आपात के उपस्थित होने पर यह महत्वपूर्ण मूलाधिकारों के उल्लंघन का अधिकार दे चुकी है। यदि अब राज्यों को उच्चतम न्यायालय की शक्ति का भी उल्लंघन करने का अधिकार दिया गया तो, मेरे विचार से, हम बहुत आगे बढ़ जायेंगे। मेरे मित्र श्री शिब्बनलाल और श्री कामत में भावी सरकारों को यह शक्ति प्रदान करने का विरोध किया है और मैं उनके विचारों से सहमत हूं। आपात की उद्घोषणा तभी करनी होगी, जब देश की शान्ति अथवा सरकार का अस्तित्व संकट में पड़ जाये। हमें यह समझना चाहिये कि शासकों की प्रवृत्ति शासितों के विरुद्ध ही रहती है। इसलिये अपने देश का संविधान बनाते समय में यह न भूलना चाहिये कि लोगों के अधिकारों और विशेषाधिकारों का भी राज्य के प्राधिकार से विरोध रहता है और हमें परस्पर विरोध में असंतुलन न आने देना चाहिये। राजनैतिक अधिकार प्रदान करते समय हमें शासकों और शक्तियों के अधिकारों में सामंजस्य पैदा करना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोकतंत्रात्मक राज्य में लोगों की इच्छानुसार ही सरकार का संगठन होता है, किन्तु फिर भी जब एक बार राज्य सुसंगठित रूप धारण कर लेता है तो लोग सक्रिय नहीं रह जाते। राज्य ही लोगों पर शासन करता है। अपना ही उदाहरण लीजिये। आज संविधान सभा के सदस्य ही शासक हैं। वास्तव में भारतीय राज्य का पूर्ण प्राधिकार संविधान सभा (विधायी) के हाथ में है। हम शक्ति का प्रयोग करते हैं। हम किस पर यह शक्ति प्रयोग करते हैं? हम यह शक्ति प्रयोग उन लोगों पर करते हैं जिनके प्रतिनिधित्व का हम दावा करते हैं। क्या प्रशासन में हमारे निर्वाचकों का कोई हाथ है? क्या उसके संचालन में उनके मत को कोई प्रभाव होता है? जी नहीं। हमें यह न समझ लेना चाहिये कि हम हमेशा इसी प्रकार बने रहेंगे। यह हमेशा होता है कि जब कोई व्यक्ति किसी दायित्वपूर्ण पद पर आरूढ़ होता

[श्री महावीर त्यागी]

है तो वह यह समझता है कि वह पद प्रभाव-पूर्ण होना चहिये और उसे अधिकाधिक शक्तियां प्राप्त होनी चाहिये। यह वह इसलिये समझता है कि उसे आत्मविश्वास होता है। वह यही धारणा बना लेता है कि किसी पद के साथ जो शक्तियां प्राप्त होती हैं उनका दुरुपयोग हो ही नहीं सकता। किन्तु उसे यह भी समझना चाहिये कि किसी पद पर एक ही व्यक्ति हमेशा आसीन नहीं रहता। आगे चलकर कोई दूसरा व्यक्ति भी उस पर आसीन हो सकता है। इसलिये राज्य को अधिक शक्ति देते हुए हमें, लोक-प्रतिनिधि होने के नाते तथा लोगों के अधिकारों के निर्णायक होने के नाते भी, इसे ध्यान में रखना चाहिये कि राज्य भी दूसरों के हाथ में जा सकता है। यह भी हो सकता है कि भविष्य की सरकारों को लोगों के अधिकारों को इतनी चिन्ता न हो और वे इन शक्तियों का दुरुपयोग भी करें। लोग राज्य की धांधली का निराकरण न्यायालय में ही करा सकते हैं। इसलिये यदि हम प्रोत्साहन पाकर राज्य की न्यायपालिका से भी आगे बढ़ने अथवा उसका उल्लंघन करने की शक्ति प्रदान कर देते हैं तो जंगलीपन ही जंगलीपन रह जायेगा। सरकार पर, अथवा लोगों पर नियंत्रण रखने के लिए कुछ न रह जायेगा। श्रीमान्, मुझे केवल भारत का ही अनुभव है किन्तु मेरे कई माननीय मित्रों ने, जिन्होंने विदेशों के बारे में पुस्तकें पढ़ी हैं और वहां की राजनीति को भी देखा है, एक भिन्न प्रकार के लोकतंत्र की कल्पना कर रखी है। मैं उनके अनुभव और ज्ञान के महत्व को मानता हूं किन्तु मुझे यह दिखाई देता है कि उनके विचार बाहर से ग्रहण किये हुए हैं। मैं उनसे अनुरोध करता हूं कि वे भारतीय लोकतंत्र के विकास का अध्ययन करें। जिस प्रकार यहां लोकतंत्र प्रयोग में लाया जा रहा है क्या वे उससे संतुष्ट हैं? श्रीमान्, मैंने जो कुछ अपनी आंखों देखा है उसी पर मेरे विचार आधृत हैं। यहां की सरकार तथा विभिन्न प्रान्तों की सरकारें कह तो सकती हैं कि वे लोगों की सरकारें हैं। आज लोगों की इस प्रकार की सरकारें सारे भारत भर में हैं और ऐसे क्षेत्रों में भी हैं जो पहले देशी राज्य कहे जाते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शासन लोगों का ही है किन्तु फिर भी यह बात रह ही जाती है कि व्यवहार में शासन की प्रवृत्ति लोगों के विरुद्ध होती है मेरे विचार से केवल मतों से कोई सरकार लोगों की सरकार नहीं हो जाती। निसन्देह तर्क से तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि चूंकि लोगों ने सरकार के पक्ष में मत दिये हैं इसलिये सरकार लोगों की सरकार है और वह सरकार यह भी कह सकती है कि वास्तव में लोग ही शासन कर रहे हैं। किन्तु यह सच नहीं है। लोगों ने केवल एक बार मत दिया। निर्वाचन के पश्चात् वे राजनीति से अलग हो गये और फिर उनका सरकार पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया। दूसरे निर्वाचन तक अथवा ऐसे समय तक जब उन्हें मत देने का अवसर प्राप्त होगा, वे लोकतंत्र के सुसुप्त साझीदार बने रहेंगे। हमें सरकार को पदच्युत करने का अधिकार नहीं है। एक बार सरकार के पक्ष में मत देने के पश्चात् लोगों को सरकार को पदच्युत करने अथवा उसकी आलोचना करने का अधिकार नहीं रह जाता, जब तक कि नया निर्वाचन न हो। इसलिये राज्य को, अथवा सरकार को, हम जो कोई अधिकार चाहे दें किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उनका प्रयोग लोकहित में ही होगा। इस समय भारत में जिस प्रकार का लोकतंत्र है, उसके प्रति लोगों के हृदय में कुछ भी महत्व नहीं है, उन्हें केवल यह अधिकार प्राप्त है कि वे न्यायपालिका के सामने स्वतंत्रता से उपस्थित हो सकते हैं। जो लोग यह समझे कि उनके मूलाधिकारों अथवा अन्य

अधिकारों का खण्डन हुआ है, वे न्यायालय के सामने अपने मामले को रख सकते हैं। केवल इस प्रत्याभूति से और भी इसी सुरक्षा से लोगों को संतोष हो सकता है। यदि लोगों से यह कहा गया कि भारत में राज्य ही सर्वसत्ताधारी है और वह उच्चतम न्यायालय का भी उल्लंघन कर सकता है, तो उन्हें अपनी सुरक्षा और अपने अस्तित्व पर विश्वास न रह जायेगा। स्वाधीन न्यायपालिका से सुरक्षा का, तथा राज्य के अत्याचार से मुक्ति का आश्वासन केवल जनसाधारण को ही नहीं मिलता है किन्तु जब कभी समाज के उत्पीड़न से किसी व्यक्ति के अधिकारों और विशेषाधिकारों का हनन होता है तो उस समय वह अपना आत्मविश्वास खो नहीं बैठता। यदि समाज किसी एक व्यक्ति के प्रति भी कठोर होता है तो उस व्यक्ति को भी सुरक्षा तथा यह प्रत्याभूति प्राप्त होनी चाहिये कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है और अकेले भी जीवन-निर्वाह कर सकता है। उसे यह प्रत्याभूति भी प्राप्त होनी चाहिये कि उसे अन्याय सहन नहीं करना पड़ेगा और उसके प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार किया जायेगा। यह प्रत्याभूति उसे तभी मिल सकती है जब उसे यह विश्वास हो कि न्यायालय की सत्ता सर्वोच्च है। यदि सारा समाज भी उसके विरुद्ध हो जाये तो उसे भारत का नागरिक होने के नाते यह प्रत्याभूति प्राप्त रहेगी कि वह रक्षा और सहायता के लिए उच्चतम न्यायालय के सामने जा सकता है। इसलिये, मेरा यह निवेदन है कि इस अनुच्छेद की भयंकर प्रतिक्रिया होगी। इससे किसी व्यक्ति को यह विश्वास न रह जायेगा कि विधि का न्यायपूर्ण प्रवर्तन होगा। इसी विश्वास पर लोग समाज से नाता जोड़े हुए रहते हैं। इस सुरक्षा के अभाव में समाज विघटित हो जायेगा और उसके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इस अनुच्छेद में जो सिद्धान्त सन्निहित है वह बहुत निन्दनीय है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं इसके पक्ष में मत नहीं दे सकता। यदि सारी सभा भी सरकार को ये शक्तियां प्रदान करने के पक्ष में है, चाहे वे आपातकाल के मिले ही क्यों न हो, मैं यह चाहता हूं कि इसका उल्लेख रहे कि मैं इसके विरुद्ध हूं और हमेशा इसके विरुद्ध रहूंगा (वाह, वाह)। मेरे विचार से किसी भी परिस्थिति में किसी व्यक्ति को न्यायापालिका को परिचालित कराने के अधिकार से वंचित न करना चाहिये। श्रीमान्, जो मसौदा हमारे सामने रखा गया है उसे यदि हम स्वीकार करेंगे तो, यद्यपि मैं कह नहीं सकता कि यह तर्कयुक्त है या नहीं, क्योंकि वकील ही इसका निर्णय कर सकते हैं, किन्तु मेरी यह धारणा है कि कोई भी मूलाधिकार सुरक्षित नहीं रहेगा और जीवन और सम्पत्ति की तथा राजनैतिक स्वातंत्र्य तथा राजनैतिक अधिकारों की सुरक्षा का भी आश्वासन न रहेगा। इसे दृष्टि में रखते हुए कि राजनैतिक दल लोकतंत्रात्मक व्यवहार से सुपरिचित नहीं हैं, हमें भविष्य में यह देखकर आश्चर्य न होना चाहिये कि लोगों को केवल ऐसे साधारण कारणों के आधार पर फांसी पर लटकाने का आदेश दे दिया गया कि उनका पदारूढ़ लोगों से मतैक्य नहीं है। यह सब कुछ आपात के नाम पर किया जायेगा। सम्भव है कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर फांसी पर चढ़ने वाले लोगों को किसी प्रकार न्यायालय में उपस्थित करा सकें, किन्तु मेरे विचार से इसके लिए कोई अवसर न मिलेगा, क्योंकि सभी मूलाधिकार अथवा बन्दिप्रत्यक्षीकरण के अधिकार पूर्णतया निलम्बित कर दिये जायेंगे। पिछले दो वर्षों के लोक-शासन के संचालन के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि हमारे प्रतिनिधियों को अभी यह जानने में बहुत देर लगेगी कि लोक-हित में प्रशासन को किसी प्रकार चलाया

[श्री महावीर त्यागी]

जा सकता है। यह गलत है कि हमारी सरकार भी, चाहे वह कितनी ही लोकप्रिय क्यों न हो, लोगों की सरकार है। न उनके संचालन में लोगों का हाथ है और न हम उसकी इच्छाओं को कार्यान्वित कर सकते हैं। हम बहुत समय पूर्व अंग्रेजों से लड़ने के लिए निर्वाचित किये गये थे और व्यवहित निर्वाचन के आधार पर अब यहां आये हैं। लोगों ने हमें उनके लिए संविधान बनाने का अधिकार नहीं दिया है। अंग्रेजों ने हमें यह अधिकार दिया और विदेशियों के दिये हुए इस अधिकार से हम लोगों के लिए संविधान बना रहे हैं। यह संविधान बिना लोगों की सहमति के और बिना किसी विधि की मंजूरी के लोगों पर लादा जा रहा है। इसलिए लोगों के अधिकारों की उपेक्षा करके विधि बनाना अथवा संविधान बनाना न्यायोचित न होगा और विधि और संविधान की दृष्टि से गलत होगा। इस कारण, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि मसौदा-समिति अपनी सम्मति पर फिर विचार करे और इस पर भी विचार करे कि क्या इस अनुच्छेद में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता है जिससे न्यायपालिका की सर्वोच्च सत्ता पर इस ढंग से हस्तक्षेप न हो सके, जिसका कि इस अनुच्छेद में प्रस्ताव किया गया है। श्रीमान्, लोगों की सरकार स्थापित होने में अभी देर लगेगी और केवल मत देने से वह स्थापित भी नहीं की जा सकती, हमारी मनोवृत्ति से तथा प्रशासन-प्रणाली से और हमारे व्यवहार से हम सरकार को सच्चे अर्थ में लोगों की सरकार बना सकते हैं। केवल मंत्री ही लोगों के न होने चाहियें, सरकार भी लोगों की होनी चाहिये। सरकार को नीति लोगों की नीति होनी चाहिये। तभी कोई सरकार लोगों की सरकार हो सकती है। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि लोगों को अभी शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। जब तक लोगों को इतने अधिकार नहीं मिल जाते कि वे सरकार को अपनी नीति स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सकें, तब तक कोई भी सरकार, चाहे वह कितनी ही लोक-प्रिय क्यों न हो, लोगों की सरकार नहीं कही जा सकती। यदि इतनी तेजी से परिवर्तन होते रहे, जितनी तेजी से इस समय हो रहे हैं, और सरकार अपनी हठधर्मी पर अड़ी रही तो वह लोगों पर अत्याचार करने लगेगी और एक समय वह भी आयेगा जब लोग अपनी सरकार को स्थापित करेंगे, क्योंकि आखिर देश की व्यवस्था है तो लोकतंत्रात्मक ही। लोगों की आवाज बहुत काल तक नहीं दबाई जा सकती और अन्त में वही प्रभावी होती है। जिस दिन वे अपने अधिकारों को प्रयोग करने लगते हैं और स्वतंत्रता से कार्य करने लगते हैं, उस दिन उनकी सरकार स्थापित हो जाती है और साथ ही एक विरोधी दल भी उठ खड़ा होता है। किन्तु अभी हम लोकतंत्र से सुपरिचित नहीं हुए हैं। इस सभा में भी किसी विरोधी दल के प्रति उतनी उदारता से व्यवहार नहीं किया जाता, जितनी उदारता से विदेशों में व्यवहार किया जाता है। मेरा यह निवेदन है कि भारत में अभी उदारता, बौद्धिक सच्चाई और आत्मविश्वास का प्रादुर्भाव होना शेष है। जब तक हम अपने विरोधियों से आदर तथा सम्मानपूर्ण व्यवहार करना न सीखेंगे और जब तक देश में राजनैतिक दलों की आपस की कटुता बनी रहेगी तब तक इस अनुच्छेद के संविधान में प्रविष्ट होने से कई विद्वान और देशभक्त लोगों का बहुमूल्य जीवन संकट में रहेगा, क्योंकि जैसे ही युद्ध छिड़ेगा पदारूढ़ दल अपने विरोधियों को समाप्त करने का प्रयास करने लगेगा। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यह शताब्दी आपातों की ही शताब्दी है। घर में और सारे संसार भर

में आपात उपस्थित रहेगा और आपातों का कोई अन्त भी न होगा। यह भी हो सकता है कि वे बार-बार उपस्थित हों और अधिकांश देशों की भावी सरकारें आपातों की उद्घोषणाओं के अधीन ही कार्य करें। यदि वास्तव में इतना संकटपूर्ण काल रहा तो देश में अधिक समय तक आपात की उद्घोषणायें ही प्रवर्तन में रहेंगी और सरकार अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर लेने तथा दूसरे निर्वाचन के भय से मुक्त होने के कारण अत्याचारपूर्ण तथा पाशविक व्यवहार करने की ही प्रवृत्ति रखने लगेगी। विरोधी दल के लिए कुछ भी सुरक्षा न रहेगी। इसलिये ईश्वर के लिए, लोगों को तथा अपने विरोधियों को अपने जीवन, सम्मान तथा स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए उच्चतम न्यायालय के सामने उपस्थित होने के आधारभूत अधिकार से वंचित न कीजिये। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह अनुच्छेद स्वीकार न किया जाना चाहिये और मसौदा-समिति को, लोकतंत्र को तथा हमारे भावी स्वातंत्र्य को ध्यान में रखते हुए कृपा करके इस पर फिर विचार करना चाहिये और इसे इस प्रकार संशोधित कर देना चाहिये कि भविष्य की सरकारें उसका किसी प्रकार भी दुरुपयोग न कर सकें।

इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का विरोध करता हूं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस प्रतिक्रियामूलक तथा प्रतिगामी अध्याय के महिमामंडित उपसंहार तक पहुंचने पर, मेरे विचार से, सभी को यह दृष्टिगोचर हो गया होगा कि इस अध्याय के सभी उपबन्ध दो विचारधाराओं से प्रभावित तथा अनुप्राणित हैं। मुझे यह दिखाई देता है कि आभ्यंतरिक अशांति, बाह्य आक्रमण अथवा स्थानीय अशांति की आशंका की सम्भावना का भय दिखाकर यह इच्छा प्रकट की गई है कि कार्यपालिका को, केन्द्र को और सरकार को विधान-मंडलों, एककों और लोगों के विरुद्ध भी कार्यवाही करने के लिए सशक्त बनाया जाये। श्रीमान्, इस अध्याय के सभी उपबन्धों को ध्यानपूर्वक देखने के पश्चात्, और प्रत्येक अनुच्छेद में जो शक्तियां प्रदान की गई हैं उनकी परीक्षा करने के पश्चात्, मुझे यह दिखाई देता है कि इस संविधान में लोकतंत्र तथा स्वातंत्र्य का केवल उल्लेखमात्र रह जायेगा। मेरे विचार से इन अनुच्छेदों में से प्रत्येक अनुच्छेद से और अन्त में विशेषत: इस अनुच्छेद से, जिसके अधीन मूलाधिकार तथा मूलाधिकारों को प्रवर्तन में लाने के लिए उच्चतम-न्यायालय के सामने उपस्थित होने का अधिकार केवल इस कारण निलम्बित किया जा सकता है कि राज्य के प्रभुत्व ने आपात की घोषणा कर रखी है, मेरे विचार से स्वातंत्र्य के अधिकार का तथा पिछले अध्यायों द्वारा प्रदत्त हर प्रकार के नागरिक स्वातंत्र्य के अधिकार का अपहरण हो जाता है।

मुझे यह भी दिखाई देता है कि यह अनुच्छेद पहले पारित किये हुए अनुच्छेदों की शब्दावली तथा भावना से भी असंगत है, क्योंकि उनके अधीन यद्यपि राष्ट्रपति अन्य सभी शक्तियों तथा कृत्यों को अपने हाथ में ले सकता है अथवा किसी अन्य प्राधिकारी को सौंप सकता है किन्तु वह उच्च न्यायालयों की शक्ति तथा प्राधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इन अनुच्छेद में यद्यपि प्रत्यक्षत: उच्च-न्यायालयों की, अथवा उच्चतम न्यायालय की, अथवा किसी भी न्यायालय की शक्ति में हस्तक्षेप नहीं किया गया है, किन्तु चूंकि अनुच्छेद 25 द्वारा प्रत्याभूत उच्चतम-न्यायालय को परिचालित करने का अधिकार इस अनुच्छेद के अधीन निलम्बित किया जा सकता है इसलिये यदि स्वीकार किया गया तो उच्च-न्यायालयों की, उच्चतम

[प्रो. के.टी. शाह]

न्यायालय की, अथवा किसी भी न्यायालय की शक्तियां निलम्बित की जा सकती हैं। न्यायालय कार्यपालिका के कार्यों से पीड़ित लोगों से यह नहीं कह सकते—"आप अपने कष्ट को हमें बताइये, हम उसका निवारण करेंगे"। न्यायालय तभी कार्यवाही कर सकते हैं जब कोई पीड़ित व्यक्ति उनके सामने आपने मामले को रखे अथवा संविधान में वर्णित मूलाधिकारों का प्रश्न उठाये। यदि यह नहीं किया जा सकेगा, जैसा कि इस अनुच्छेद का उद्देश्य है, तो न्यायालयों का अधिकार तथा शक्ति भी निलम्बित हो जायेगी।

उद्देश्य यह न होना चाहिये था और संविधान के इस प्रकार के किसी उपबन्ध का आशय भी यह न होना चाहिये था। जिस समय आप संविधान में इस प्रकार के अनुच्छेद को स्थान देंगे उसी समय आप यह भी उपबंधित कर देंगे कि पिछले एक अनुच्छेद द्वारा उच्चतम न्यायालय को परिचालित कराने के जिस अधिकार की प्रत्याभूति दी गई है, वह राष्ट्रपति के आदेश से, कार्यपालिका के आदेश से, निलम्बित हो सकता है और उसी समय आप यह भी घोषित कर देंगे कि आपके सारे संविधान का कोई प्रभाव नहीं रह गया है।

डॉ. अम्बेडकर यह समझते हैं, और मेरे विचार से वे ठीक ही समझते हैं, कि उन्होंने बड़ी योग्यता से 'छह' शब्द को बदलकर उसके स्थान में 'आधे दर्जन' शब्द रख दिये हैं अर्थात् यह कहने के स्थान पर कि उद्घोषणा के लागू रहने तक और कुछ समय बाद तक अधिकार निलम्बित रहेंगे, उन्होंने अब यह कहा है कि उद्घोषणा के लागू रहने तक अथवा उससे छोटी कालावधि के लिए, अधिकार निलम्बित रहेंगे। इस सीमा तक उनके संशोधन की प्रशंसा की जा सकती है। किन्तु उसका आशय वही रहता है, अर्थात् संविधान द्वारा पीड़ित नागरिकों को न्यायालयों को परिचालित करने के अधिकार की जो एकमात्र प्रत्याभूति दी गई है, वह भी निलम्बित हो जायेगी, जिसके फलस्वरूप उनके मूलाधिकारों का अपहरण हो जायेगा। यदि डॉ. अम्बेडकर के प्रस्तावानुसार कालावधि कम भी कर दी जाये तो इस पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

इसलिये जब तक यह उपबन्ध उसी रूप में रहने दिया जाता है, जिस रूप में यह प्रस्तावित किया गया है, और जब तक कार्यपालिका ही इस प्रकार का आदेश दे सकती है और मूलाधिकारों को निलम्बित कर सकती है, तब तक यह उपबन्ध आपत्तिजनक रहेगा और इस पर आपत्ति की ही जानी चाहिये।

जैसाकि एक संशोधन द्वारा प्रस्तावित किया गया है, यदि आपकी वास्तव में यह धारणा हो कि जब कभी ऐसा गम्भीर आपात उपस्थित हो कि आप इसकी प्रतीक्षा नहीं कर सकते कि सामान्य लोगों के अधिकार प्रयोग में आये और प्रक्रिया विध्यनुसार प्रयोग में आये और आप यह समझते हों कि किसी असाधारण कार्यवाही को करने की आवश्यकता है, तो अवश्य ऐसी कार्यवाही कीजिये, किन्तु इसके लिये विधान-मंडल का विश्वास प्राप्त कर लीजिये और उससे इसके लिए आवश्यक विधि बनाने के लिए कहिये। आप यह क्यों मान लेते हैं कि विधान-मंडल इतना प्रतिक्रियाशून्य होगा, इतना कठोर हृदय होगा, इतना उदासीन तथा देश की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ होगा कि वह किसी ऐसी विधि को बनाने के लिए तैयार न होगा, जिसकी देश में शांति बनाये रखने अथवा बाह्य आक्रमण का सामना करने

के लिए आवश्यकता हो? आखिर आपके सामने इंग्लिस्तान का उदाहरण है जिसने इसी शताब्दी में दो महायुद्ध किये हैं। उस समय भी साम्राज्य प्रतिरक्षा-अधिनियमों के अधीन कुछ अधिकारों का, जिन्हें हम मूलाधिकार कहते हैं, निलम्बन किया गया था, अथवा अपहरण किया गया था और किसी व्यक्ति ने भी तद्विषयक विधि के पारित होने का विरोध नहीं किया था। यह आप क्यों माने लेते हैं कि भारत के विधान-मंडल, भारत के लोगों के निर्वाचित किये हुए प्रतिनिधि देश की आवश्यकताओं की इतनी भी चिंता न करेंगे? यह आप क्यों समझते हैं कि संसद् स्थिति से अनभिज्ञ होगी, अथवा आवश्यक विधि को पारित करने के लिए तैयार न होगी, और इसलिये कार्यपालिका को सशक्त बनाने, राष्ट्रपति को कार्यपालिका आदेश द्वारा इस प्रकार के अधिनियम को बनाने का प्राधिकार देने, और यहां तक कि न्यायालयों द्वारा न्याय कराने के जिस एक मात्र मूलाधिकार की प्रत्याभूति दी गई है, उसका भी निलम्बन करने अथवा अपहरण करने की आवश्यकता है?

मेरे विचार से इसका अर्थ राष्ट्रपति को अत्यधिक शक्ति देना ही है और मैं समझता हूं कि मसौदाकारों को प्रतिक्रिया के इस आधिक्य के विरुद्ध जोरदार शब्दों में तथा बार-बार चेतावनी देने की आवश्यकता न होनी चाहिये। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि यदि इस खण्ड की आवश्यकता ही है—यद्यपि मेरे विचार से इसकी आवश्यकता नहीं है—तो इसे विधानमंडल की शक्ति-सम्बन्धी भाग में स्थान देना चाहिये। यदि आप यह समझते हैं कि संसद् का अथवा लोगों की बुद्धि का विश्वास नहीं किया जा सकता, तो संविधान में इस आशय का कोई उपबन्ध न होने पर भी कार्यपालिका कार्यवाही करे और उसका जो कुछ भी परिणाम हो उसका सामना करे। अच्छा तो यह होगा कि आप विधान मंडल से कोई ऐसी विधि बनाने के लिए कहें, जिसके किसी विशिष्ट उपबन्ध द्वारा ये शक्तियां प्रदान की जायें।

यह स्पष्ट है कि इस संशोधन में कार्यपालिका के जिस आदेश की कल्पना की गई है उसमें तथा संसद के अधिनियम में क्या अन्तर है। जहां कार्यपालिका के आदेश के सम्बन्ध में केवल राष्ट्रपति ही कार्यवाही करेगा, अथवा उसके एक या दो मंत्री उसे मंत्रणा देंगे और वह उनकी मंत्रणा के आधार पर बिना आगे विचार-विमर्श हुए कार्यवाही करेगा, वहां संसद् के आदेश के सम्बन्ध में प्रत्येक उपबन्ध पर तथा उपबन्धों के प्रत्येक शब्द पर पूरा प्रकाश डाला जायेगा। इस प्रकार के विशिष्ट उपबन्धों की आवश्यकता को ही पूर्णतया स्पष्ट नहीं किया जायेगा, बल्कि कार्यपालिका की इस प्रकार की कार्यवाही को विशेष दशाओं में प्रभाव में लाने के पूर्व यह भी स्पष्ट किया जायेगा कि संसद् को किन परिसीमाओं तथा प्रतिबन्धों को आरोपित करना चाहिये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि सब शक्ति, प्राधिकार तथा प्रभाव से कार्यपालिका को सम्पन्न बनाने के स्थान पर अच्छा यह होगा कि कम से कम देश की केन्द्रीय संसद् को—मैं स्थानीय विधान-मंडलों का सुझाव नहीं रख रहा हूं—इन विषयों पर विचार-विमर्श करने तथा आवश्यक विधि को पारित करने का अधिकार प्रदान किया जाये। यदि आप कार्यपालिका की बुद्धिमत्ता से लोगों के सभी प्रतिनिधियों की बुद्धिमत्ता पर अधिक विश्वास करते हैं, तो मेरे विचार से जिस संशोधन द्वारा यह प्रस्ताव किया गया है कि यह शक्ति संसद् के अधिनियम द्वारा न कि राष्ट्रपति के कार्यपालिका-आदेश द्वारा प्रदान की जाये, उसे स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या मैं एक शब्द कह सकता हूं? चूंकि यह प्रश्न उठाया गया है कि कार्यवाहियां राष्ट्रपति के आदेश से, अर्थात् कार्यपालिका की मंत्रणा से, अर्थात् विधान-मंडल का विश्वास-प्राप्त कार्यपालिका की मंत्रणा से, निलम्बित हों अथवा संसद् द्वारा निर्मित विधि द्वारा निलम्बित हों और इस सम्बन्ध में मतभेद है कि यह निलम्बन कार्य पालिका की कार्यवाही से हो या संसद् की विधि से हो, इसलिये मैं यह चाहता हूं कि यह अनुच्छेद कुछ समय के लिये स्थगित रखा जाये, ताकि मसौदा-समिति को इस पर विचार करने का अवसर मिल सके। इस समय हम अन्य अनुच्छेदों पर विचार कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद को स्थगित रखा जाये। अब हम अनुच्छेद 247 को उठाते हैं।

अनुच्छेद 247

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

अनुच्छेद 247 से आरम्भ होने वाले अनुच्छेदों के शीर्षक के स्थान पर निम्नलिखित शीर्षक रखा जाये:–

'General' (सामान्य)''

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से इस पर अधिक विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है। प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 247 से आरम्भ होने वाले अनुच्छेदों के शीर्षक के स्थान पर निम्नलिखित शीर्षक रखा जाये:–

'General' (सामान्य)''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2832।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 247 में से 'unless the context otherwise requires' (जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो) शब्द निकाल दिये जायें।"

मेरा यह निवेदन है कि ये शब्द अनावश्यक ही नहीं हैं बल्कि बहुत कुछ भ्रामक भी हैं। अनुच्छेद 247 में कुछ महत्वपूर्ण खण्ड हैं। खण्ड (क) में 'वित्त-आयोग' की परिभाषा की गई है। मेरा यह निवेदन है कि वित्त योजना सुस्पष्ट पदावलि है। उसका एक ही अर्थ है और वह सारे संविधान में एक ही स्पष्ट अर्थ में प्रयुक्त है। खण्ड (ख) में 'राज्य' की यह स्पष्ट परिभाषा की गई है कि उसके अन्तर्गत इस समय प्रथम अनुसूची में भाग (2) में उल्लिखित कोई

राज्य नहीं है। विभिन्न स्थलों में 'राज्य' की स्पष्ट परिभाषा की गई है और भाग (2) में उल्लिखित राज्य की भी स्पष्ट परिभाषा की गई है और उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम होने की सम्भावना नहीं है। इसलिये यहां 'राज्य' शब्द का जो अर्थ है वह स्पष्ट है। खण्ड (ग) में कहा गया है कि "इस समय प्रथम अनुसूची में भाग (2) में उल्लिखित राज्यों के निर्देशों के अंतर्गत प्रथम अनुसूची के भाग (4) में उल्लिखित किसी राज्य-क्षेत्र के, तथा किसी ऐसे अन्य राज्य-क्षेत्र के, जो भारत राज्य-क्षेत्र में समाविष्ट तो हो, किन्तु उस अनुसूची में उल्लिखित न हो, निर्देश भी होंगे।" मेरा यह निवेदन है कि प्रथम अनुसूची का भाग (2) और भाग (4) स्पष्ट है और इसलिये खण्ड (क), (ख) और (ग) की ये व्याख्यायें भी बिल्कुल स्पष्ट हैं और किसी प्रसंग में भी इनके सम्बन्ध में भ्रम होने की सम्भावना नहीं है। इसलिये 'जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो शब्द बिल्कुल अनावश्यक हैं। मैं माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे बतायें कि किस स्थल पर प्रसंग से 'अन्यथा अपेक्षित' हो सकता है। दंड-संहिता में परिभाषायें स्पष्ट होती हैं और इसलिये 'जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो' पदावली भ्रामक और बिल्कुल अनावश्यक हैं। इस पदावली को रखने से पाठक को तथा संविधान-वेत्ता को इन शब्दों का जो निश्चय अर्थ बताया गया है, उसे समझने के लिए बहुत सोचना पड़ेगा। पाठक के मस्तिष्क में किसी प्रकार की अनिश्चितता अथवा संदेह न रहने देने के लिए इन शब्दों को निकाल देना चाहिये। मेरे संशोधन का यही उद्देश्य है।

(संशोधन संख्या 2833 से लेकर 2836 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** क्या कोई सदस्य महोदय बोलना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे केवल इतना ही कहने की आवश्यकता है कि ये शब्द 'पर्याप्त सावधानी' के लिए समाविष्ट किये गये हैं। हो सकता है कि ये अनावश्यक हों, किन्तु यह भी हो सकता है कि इनकी आवश्यकता पड़े। हम इन शब्दों को रहने देना चाहते हैं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 247 में से 'Unless the Context otherwise requires' (जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 247 संविधान का अंग बना लिया जाय।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 247 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 248

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 248 को उठाते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 248 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखे जायें:–

'248. No tax shall be levied or collected except by authority of Law.'

Taxes to be imposed save by authority of Law.

'248-A (1) Subject to the provisions of this Chapter with respect to the assignment of the whole or part of the net proceeds of certain taxes and duties to States, all revenues or public moneys raised or recieved by the Government of India shall form one Consolidated Fund to be entitled "the Consolidated Fund of India", and shall revenues or public moneys raised or received by the Government of a State shall from one Consolidated Fund to be entitled. "The Consolidated Fund of the State".

Consolidated Fund

(2) No moneys out of the Consolidated Fund of India or of a State shall be appropriated except in accordance with Law and for the purposes and in the manner provided in this Constitution.' "

248. विधि के प्राधिकार के सिवाय कोई कर न तो आरोपित और न संगृहीत किया जायेगा।

विधि-प्राधिकार के सिवाय करों का आरोपण न होगा।

248-क (1) कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम के राज्यों को पूर्णतः या अंशतः सौंपे जाने के बारे में, इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए भारत सरकार द्वारा लिये हुए या प्राप्त सब राजस्व अथवा सार्वजनिक धन की एक संचित निधि बनेगी, जो "भारत की संचित निधि" के नाम से ज्ञात होगी तथा राज्य का सरकार द्वारा लिये हुए या प्राप्त राजस्व अथवा सार्वजनिक धन की एक संचित निधि बनेगी, जो "राज्य की संचित निधि" के नाम से ज्ञात होगी।

संचित निधि

(2) भारत की या राज्य की संचित निधि में से कोई धन विधि की अनुकूलता से, तथा इस संविधान में उपबंधित प्रयोजनों के और रीति से अन्यथा विनियुक्त नहीं किये जायेंगे।

हम पहले जो कुछ स्वीकार कर चुके हैं उसी के परिणामस्वरूप इन संशोधानों की भी आवश्यकता है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 196?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल) : संशोधन संख्या 196 की सूचना पंडित कुंजरू ने दी है, किन्तु वे इस समय सभा में उपस्थित नहीं हैं। मसौदा-समिति की यह धारणा है कि एक अन्य संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 196 भी स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। उस संशोधन को स्वीकार करने के लिए संशोधन संख्या 196 को पहले उपस्थित करने तथा स्वीकार करने की आवश्यकता है। यदि मुझे आज्ञा दी जाये तो इसे मैं उपस्थिति कर दूं।

***अध्यक्षः** आप उपस्थित करें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैं छपी हुई अनुपूरक सूची के संशोधन संख्या 196 को उपस्थित करता हूं, जो पंडित हृदयनाथ कुंजरू के नाम से है:

> "उपरोक्त संशोधन संख्या 195 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 248 (क) के खण्ड (1) में 'Subject to the provisions of' (के उपबन्धों के) शब्दों के बाद (हिन्दी में आगे) 'article 248-B of this Constitution and to the provisions of' [इस संविधान के अनुच्छेद 248-(ख)] शब्द तथा अंक प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान्, मैं यह कह चुका हूं कि पंडित कुंजरू के नाम से एक अन्य संशोधन भी है और मसौदा-समिति की यह धारणा है कि वह स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। मैं बाद में यह भी बताऊंगा कि वह क्यों स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। उस संशोधन को स्वीकार करने के लिए इस संशोधन को स्वीकार करना आवश्यक है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 197, जो प्रोफेसर सक्सेना के नाम से है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "उपरोक्त संशोधन संख्या 195 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 248 (क) के खण्ड (1) में से 'Subject to the provisions of this Chapter with respect to the assignment of the whole or part of the net proceeds of certain taxes and duties to States' (कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम के राज्यों को पूर्णतः या अंशतः सौंपे जाने के बारे में, इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए) शब्द निकाल दिये जायें।"

श्रीमान् पहले एक अवसर पर मैंने वित्तीय उपबन्धों की उस नवीन योजना का हृदय से समर्थन किया था, जिसमें संचित-निधि आदि की व्यवस्था की गई थी। अपने इस संशोधन में मैंने केवल यह सुझाव रखा है कि डॉ. अम्बेडकर ने जिस अनुच्छेद 248 (क) का प्रस्ताव उपस्थित किया है, उसमें से 'कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम के राज्यों को पूर्णतः या अंशत सौंपे जाने के बारे में,

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए' शब्दों को निकाल दिया जाये। इसका क्या प्रभाव होगा? इस समय विचार यह है कि कई कर राज्यों को सीधे-सीधे दिये जायें, भले ही वे भारत सरकार द्वारा बनाई हुई विधियों के अधीन संगृहीत क्यों न किये गये हों। मैं यह चाहता हूं कि भारत सरकार की बनाई हुई विधियों के अधीन देश के लोगों से वसूल किये हुए कर अथवा शुल्क अथवा अन्य कोई धन पहले भारत सरकार के कोष में आना चाहिये; उसके पश्चात् उस धन-राशि से लेकर धन सौंपा जाना चाहिये। किसी राज्य के लिये यह वैध न होना चाहिये कि वह भारत सरकार द्वारा पारित विधियों के प्राधिकार से संगृहीत राजस्व को स्वयं ले ले। बिना पहले केन्द्रीय सरकार के कोष में आये हुए धन राज्यों के कोषों में जमा न होना चाहियें। मैं यह चाहता हूं कि सब धन एक स्थान पर इकट्ठा होना चाहिये और फिर वहां से वितरित होना चाहिये। इससे केन्द्र यह जान सकेगा कि कुल कितना धन संगृहीत हुआ और किस प्रकार वह वितरित किया गया। अन्यथा सम्भव है कि उसे यह ज्ञात न हो सके कि किसी कर से कितना धन संग्रह हुआ है। मेरा संशोधन एक सीधा-सादा संशोधन है, यद्यपि उसके द्वारा यह प्रस्ताव किया गया है कि प्रक्रिया को बदला जाये। मेरे विचार से इससे सभी सहमत होंगे कि सभी धन पहले केन्द्र में इकट्ठा किया जाना चाहिये और उसके पश्चात् उसका वितरण होना चाहिये। मुझे आशा है कि यह सभा इस सीधे-सादे संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन संशोधनों पर अथवा मूल अनुच्छेद पर बोलना चाहते हैं?

(कोई सदस्य नहीं उठे।)

तब मैं पहले संशोधन पर मत लूंगा। पहला संशोधन पंडित कुंजरू के नाम से है।

प्रस्ताव यह है कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 195 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 248 (क) के खण्ड (1) में 'Subject to the provisions of' (के उपबन्धों के) शब्दों के बाद (हिन्दी में आगे) 'article 248-B of this Constitution and to the provisions of' [इस संविधान के अनुच्छेद 248 (ख)] शब्द तथा अंक प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 195 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 248(क) के खण्ड (1) में से 'Subject to the provisions of this Chapter with respect to the assignment of the whole or part of the net proceeds of certain taxes and duties to States' (कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम के राज्यों को पूर्णत: या अंशत: सौंपे जाने के बारे में इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर के उपस्थित किये हुए संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 248 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखे जाये:–

'248. No Tax shall levied or collected except by authority of Law.'

Taxes not to be imposed save by authority of Law.

'248-A. (1) Subject to the provisions of article 248-B of this Constitution and to the provisions of this Chapter with respect to the assignment of the whole or part of the net proceeds of certain taxes and duties to States, all revenues or public moneys raised or received by the Government of India shall form one Consolidated Fund to be entitled "The Consolidated Fund of India", and all revenues of public moneys raised or received by the Government of a State shall form one Consolidated Fund to be entitled "The Consolidated Fund of the State."

Consolidated Funds.

(2) No moneys out of the Consolidated Fund of India or of a State shall be appropriated except in accordance with law and for the purposes and in the manner provided in this Constitution.' "

248. विधि के प्राधिकार के सिवाय कोई कर न तो आरोपित और न संगृहीत किया जायेगा।

विधि प्राधिकार के सिवाय करों का आरोपण न होगा।

248(क)(1). इस संविधान के अनुच्छेद 248 (ख) के उपबन्धों के, तथा कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम के राज्यों को पूर्णत: या अंशत: सौंपे जाने के बारे में, इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, भारत सरकार द्वारा लिये हुए या प्राप्त सब राजस्व अथवा सार्वजनिक धन की एक संचित निधि बनेगी जो "भारत की संचित निधि" के नाम से ज्ञात होगी तथा राज्य की सरकार द्वारा लिये हुए या प्राप्त राजस्व अथवा सार्वजनिक धन की एक संचित निधि बनेगी जो "राज्य की संचित-निधि" के नाम से ज्ञात होगी।

संचित निधि

(2) भारत की या राज्य की संचित निधि में से कोई धन विधि की अनुकूलता से, तथा इस संविधान में उपबंधित प्रयोजनों और रीति से अन्यथा विनियुक्त नहीं किये जायेंगे।]

संशोधन संख्या 196 द्वारा संशोधित इस अनुच्छेद पर अब मैं मत लेता हूं।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 248 और 248 (क) संशोधित रूप में संविधान के अंग बना लिये गये।

अनुच्छेद 248 (ख)

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 248 (ख) को उठाते हैं। संशोधन संख्या 198, जो पंडित कुंजरू के नाम से है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 248(क) के बाद निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद 248 (ख) रखा जाये:–

'248-B. (1) Parliament may by law establish a Contingency Fund in the nature of an imprest to be entitled "The Contingency Fund of India" into which shall be paid from time to time such sums as may be determined by such law, and the said Fund shall be placed at the disposal of the President to be advanced by him for the purpose of meeting unforeseen expenditure which has not been authorised by Parliament pending authorisation of such expenditure by Parliament by Law under article 95 or article 96 of the Constitution.

Constingency Fund.

(2) The Legislature of a State may by law establish a Contingency Fund in the nature of an imprest to be entitled the Contingency Fund of the State into which shall be paid from time to time such sums as may be determined by such law and the said Fund shall be placed at the disposal of the Governor to be advanced by him for the purpose of meeting unforeseen expenditure which has not been authorised by the Legislature of the State pending authorisation of such expenditure by the Legislature of a State under article 180 or article 181 of this Constitution.'

[248(ख)(1) संसद्, विधि द्वारा, अग्रदाय के रूप में "भारत की आकस्मिक निधि" के नाम से ज्ञात आकस्मिकता-निधि की स्थापना कर सकेगी जिसमें ऐसी विधि द्वारा निर्धारित राशियां समय-समय पर डाली जायेंगी तथा अनवेक्षित व्यय का, संविधान के अनुच्छेद 95 या अनुच्छेद 96 के अधीन संसद् द्वारा, विधि द्वारा, प्राधिकृत होना लम्बित रहने तक ऐसी निधि में से ऐसी व्यय की पूर्ति के लिये अग्रिम धन देने के लिए उक्त निधि राष्ट्रपति के हाथ में रखी जायेगी।

आकस्मिकता निधि

(2) राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अग्रदाय के रूप में "राज्य की आकस्मिकता निधि" के नाम से ज्ञात आकस्मिकता निधि की स्थापना कर सकेगा, जिसमें कि ऐसी विधि द्वारा निर्धारित राशियां समय-समय पर डाली जायेंगी, तथा अनवेक्षित व्यय का संविधान के अनुच्छेद 180 या अनुच्छेद 181 के अधीन राज्य के विधान-मंडल द्वारा, विधि द्वारा प्राधिकृत होना लम्बित रहने तक ऐसी निधि में से ऐसे व्यय की पूर्ति के लिए अग्रिम धन देने के लिए ऐसी निधि राज्य के राज्यपाल के हाथ में रखी जायेगी।]

अनुच्छेद 248 (क) में यह अपेक्षित है कि भारत सरकार के लिये प्राप्त सभी धन एक निधि में डाला जायेगा, जो भारत की संचित-निधि के नाम से ज्ञात होगी और बिना संसद् द्वारा स्पष्ट शब्दों में प्राधिकार दिये हुए संचित-निधि में से कोई धन-राशि नहीं निकाली जायेगी। समय-समय पर यह देखा गया है कि किसी विभाग के लिये संसद् द्वारा स्वीकृत धन अपर्याप्त है और किसी न किसी कारण से उससे अधिक व्यय करने की आवश्यकता पड़ी है। यदि बिना संसद् के प्राधिकार के धन व्यय किया गया तो यह एक अवैध बात होगी। किन्तु यदि धन व्यय करने से लिये कार्यपालिका विधान-मंडल की स्वीकृति की प्रतीक्षा करती रहे तो सम्बंधित विभाग को बहुत असुविधा का सामना करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त उस धन की तुरंत आवश्यकता हो सकती है और सरकार के प्रबन्ध न कर सकने के कारण लोक-हित को हानि हो सकती है। इसलिये यह आवश्यक है कि कोई ऐसा उपाय ढूंढ़ निकाला जाये जिससे सरकार बिना संसद् के प्राधिकार के अनवेक्षित व्यय को पूरा कर सके। इस उद्देश्य से मैंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि एक आकस्मिकता-निधि स्थापित की जाये जो "भारत की आकस्मिकता निधि" कही जाये। संसद् आकस्मिकता-निधि की धन-राशि निश्चित कर सकती है किन्तु जब इस निधि में धन डाल दिया जायेगा तो कार्यपालिका उसमें से ऐसे आवश्यक व्यय को पूरा करने के लिए धन निकाल सकती है, जिसके लिये संसद् ने प्राधिकार प्रदान न किया हो। किन्तु इस आकस्मिकता-निधि का यह अर्थ नहीं है कि कार्यपालिका सभा के ध्यान में अतिरिक्त व्यय को लाने तथा उसकी स्वीकृति प्राप्त करने के कर्तव्य से मुक्त हो जायेगी। यह एक सीमित निधि होगी और इसका धन व्यय हो जाने पर इसमें अधिक धन डालने की स्वीकृति के लिए कार्यपालिका को विधान-मंडल से प्रार्थना करनी होगी। इसलिये व्यय पर संसद् का पूरा नियंत्रण रहेगा। इस समय यह नियंत्रण नहीं है। हमें यह विदित है कि 1948-49 में, बिना विधान-मंडल से स्वीकृति लिये हुए, कई करोड़ रुपये व्यय किये गये थे। धन व्यय हो जाने के बहुत समय बाद हमें यह पता चला कि विधान-मंडल ने जिस धन के लिये स्वीकृति दी थी उससे कहीं अधिक धन व्यय किया गया है। यह धन इतना अधिक था कि सभा का ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट हुआ और कई सदस्य इस विषय की ओर कार्यपालिका और विधान मंडल का ध्यान आकृष्ट करने के लिए बाध्य हुए। भविष्य में इस प्रकार की अनियमित बातों को न होने देने के लिये यह आवश्यक है कि जिस निधि का प्रस्ताव मैंने रखा है उसे स्थापित किया जाये। इंग्लिस्तान में इस प्रकार की निधि है। समझदारी इसी में है कि अनवेक्षित व्यय के लिए व्यवस्था करने के हेतु हम उसके उदाहरण का अनुसरण करें। अनुच्छेद 248 (क) और 248 (ख) का उद्देश्य यह है कि बिना संसद्

की स्वीकृति के एक पैसा भी व्यय न किया जाये। मुझे आशा है कि मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करने में सभा को कोई कठिनाई न होगी।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 248 (ख) में जहां कहीं 'Such Law' (ऐसी विधि) और 'advanced by him' (अग्रिम धन देने के लिए) शब्द आये हों उनके स्थान पर क्रमश: 'Law' (विधि) और 'used by him for advancing money' (अग्रिम धन देने के लिए उस के व्यय के हेतु) शब्द रखे जायें।"

'ऐसी विधि द्वारा निर्धारित राशियां' पदावली का कोई अर्थ नहीं है। हमें 'विधि द्वारा' ही कहना चाहिये। मेरा यह भी सुझाव है कि 'अग्रिम धन देने के लिए शब्दों के स्थान पर, 'अग्रिम धन देने के लिए उसके व्यय के हेतु' शब्द रखे जायें। इसके अतिरिक्त, श्रीमान् खण्ड (2) में कहा गया है कि:—

"राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अग्रदाय के रूप में राज्य की आकस्मिकता-निधि के नाम से ज्ञात आकस्मिकता-निधि की स्थापना कर सकेगा, जिसमें ऐसी विधि (यहां केवल 'विधि' शब्द होना चाहिये और 'ऐसी विधि' शब्द न होने चाहियें) द्वारा निर्धारित राशियां समय-समय पर डाली जायेंगी, तथा अनवेक्षित व्यय का संविधान के अनुच्छेद 180 या अनुच्छेद 181 के अधीन राज्य के विधान मंडल द्वारा, विधि द्वारा, प्राधिकृत होना लम्बित रहने तक ऐसी निधि में से ऐसे व्यय की पूर्ति के लिए अंग्रिम धन देने के लिए (मेरा यह कहना है कि इस प्रकार के शब्द साधारणतया संविधानों में नहीं प्रयुक्त होते हैं और मेरा यह सुझाव है कि, 'अग्रिम धन देने के लिए उसके व्यय के हेतु' शब्द रखे जायें) ऐसी निधि राज्य के राज्यपाल के हाथ में रखी जायेगी।"

यद्यपि ये संशोधन शाब्दिक हैं, किन्तु मेरे विचार से ये देश के वित्त-सम्बन्ध खण्ड के लिये महत्वपूर्ण हैं। मूल संशोधन में जो बातें कहीं गई है उनसे मैं सहमत हूं। मेरे विचार से आकस्मिकता-निधि की आवश्यकता है और बिना इस निधि के हमारे देश के वित्त-सम्बन्धी उपबन्ध अपूर्ण ही रहेंगे। इसलिये यह अनुच्छेद पारित होना चाहिये और मेरे संशोधन द्वारा संशोधित भी कर दिया जाना चाहिये। मुझे आशा है कि मसौदा-समिति इस पर विचार करेगी और इस अनुच्छेद के शोधन का भी प्रयास करेगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मसौदा-समिति इसे स्वीकार कर रही है।

***अध्यक्ष:** प्रोफेसर सक्सेना का भी एक संशोधन है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हम इस खण्ड को उस रूप में स्वीकार कर रहे हैं, जिस रूप में पंडित कुंजरू ने उसे उपस्थित किया है।

***अध्यक्ष:** तब मैं पहले प्रोफेसर सक्सेना के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 198 में प्रस्तावित अनुच्छेद 248 (ख) में जहां कहीं 'Such Law' (ऐसी विधि और 'advanced by him' (अग्रिम धन देने के लिए) शब्द आये हों उनके स्थान पर क्रमश: 'Law' (विधि) और 'used by him from advancing money' (अग्रिम धन देने के लिए उसके व्यय के हेतु) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 248 (ख) संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

नवीन अनुच्छेद 248 (ख) संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 249

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 249 को उठाते हैं। किन्तु इसके पूर्व हमें शीर्षक के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 200 पर विचार करना है।

***माननीय डॉ. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 249 के ऊपर निम्नलिखित उपशीर्षक प्रविष्ट किया जाये:–

'Distribution of Revenues between Union and States' (संघ और राज्यों के बीच राजस्व का विवरण)।'

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन इसके बारे में कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** किसके बारे में?

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 200 के बारे में, अर्थात् इसके बारे में कि–

"अनुच्छेद 249 के ऊपर निम्नलिखित उपशीर्षक प्रविष्ट किया जाये:–

'Distribution of Revenues between Union and State'

(संघ और राज्यों के बीच राजस्व का वितरण)"

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं अनुच्छेद 249 के बारे में बोलना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद पर विचार नहीं कर रहे हैं, केवल शीर्षक पर विचार कर रहे हैं। मैं यह मान लेता हूं कि वह स्वीकार कर लिया गया है। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 249 के ऊपर निम्नलिखित उपशीर्षक प्रविष्ट किया जाये:–

'Distribution of Revenues between Union and States'

(संघ और राज्यों के बीच राजस्व का वितरण)।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 249 को उठाते हैं। इसके सम्बन्ध में कुछ संशोधनों की सूचना दी गई है। वे संशोधनों की सूची के दूसरे अंक के पृष्ठ 296 में देखे जा सकते हैं।

(संशोधन संख्या 2837 से लेकर 2840 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 249 के खण्ड (2) में से 'in that year' (उस वर्ष) शब्द निकाल दिये जायें।"

क्या मैं संशोधन संख्या 69 और संशोधन संख्या 70 को भी उपस्थित कर सकता हूं?

***अध्यक्षः** जी हां।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 249 के खण्ड (1) में 'Such stamp duties' (ऐसे मुद्रांक शुल्क) शब्दों के बाद 'as are imposed under any Law made by Parliament' (जो संसद् निर्मित विधि द्वारा आरोपित किये जायें) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 249 के खण्ड (2) में 'Revenues of India' (भारत राजस्व) शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित-निधि) शब्द रखे जायें।"

(संशोधन संख्या 68 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद तथा संशोधनों पर अब बहस हो सकती है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** क्या इस अनुच्छेद पर इसी समय बहस होगी?

***अध्यक्षः** पांच मिनट और हैं और इस बीच आज एक भाषण समाप्त हो सकता है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, अनुच्छेद 249 में जो सिद्धान्त सन्निहित हैं मैं उनके विरुद्ध हूं। संघ और राज्यों के बीच राजस्व के वितरण की जो प्रणाली इस समय प्रयुक्त है, अथवा जो प्रणाली प्रस्तावित की गई है, उसके पक्ष में मैं नहीं हूं। मैं दो प्रस्तावों के पक्ष में हूं और मैं उन्हें सभा के सामने रखना चाहता हूं। पहला प्रस्ताव यह है कि सभी शुल्क और करों का उद्ग्रहण तथा संग्रह भारत सरकार ही करे और वही उनका विनियोग भी करे। इस क्षेत्र में वित्तीय स्वशासन

न होना चाहिये। इसका एक बहुत सारवान राजनैतिक कारण है, जिसे मैं बाद को बताऊंगा।

दूसरा सिद्धान्त, जिसे मैं सभा के सामने रखना चाहता हूं, यह है कि प्रत्येक प्रान्त की आवश्यकताओं को देखकर विभिन्न प्रान्तों के बीच धन वितरित करने के लिए केन्द्र में एक स्वतंत्रकारी होना चाहिये। श्रीमान्, वह स्वतंत्र प्राधिकारी या तो राष्ट्रपति हो, या संसद् या वित्त आयोग। श्रीमान् मैं वर्तमान प्रणाली के पक्ष में इस कारण नहीं हूं कि वह राष्ट्रीयता के आधारभूत सिद्धान्त के विरुद्ध है। श्रीमान्, राष्ट्रीयता का अर्थ यह है कि राज्य-क्षेत्र का प्रत्येक भाग जितना मेरा है उतना आपका भी है।

राष्ट्रीयता का दूसरा अर्थ यह है कि देश की सम्पत्ति पर प्रत्येक नागरिक का समान अधिकार है। राजस्व वितरण की वर्तमान प्रणाली से मुनष्यों के बीच तथा प्रान्तों के बीच असमानता उत्पन्न होती है। इसी कारण मैं राजस्व वितरण की वर्तमान प्रणाली के विरुद्ध हूं। मैं चाहता हूं कि इसे पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये।

अपने देश के राजनैतिक जीवन को देखते हुए मेरा यह सुझाव है कि धन राष्ट्रपति वितरित करे। मैं चाहता हूं कि एक दिन ऐसा आये जब धन के वितरण का प्रश्न ही न रहे और प्रान्तों का अस्तित्व न रह जाये। वित्तीय स्वशासन एक संकटपूर्ण व्यवस्था है, क्योंकि इससे स्वाधीन राज्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होता है। यह ऊंट की कमर तोड़ने के लिये उस पर आखिरी तिनका रखने के समान है। प्रान्तों को पर्याप्त शक्तियां दी जा चुकी हैं। केवल इस प्रणाली में ही हम प्रांतों को भारत सरकार के आधीन तथा उसके निदेशन तथा नियंत्रण में रख सकते हैं। यदि बम्बई अथवा मद्रास जैसे बड़े प्रान्तों को, (मैं यह खेद के साथ कहता हूं), वित्तीय स्वशासन प्रदान किया गया, तो उसका परिणाम क्या होगा? भविष्य में किसी राजनैतिक आन्दोलन के प्रभाव से ये दो प्रान्त घोषित कर सकते हैं कि वे स्वाधीन हो गये हैं। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि प्रान्तीय मंत्री भारत सरकार के पास आयें और धन-वितरण के सम्बन्ध में अपने यहां की स्थिति को उसके सामने रखें, ताकि वे भारत सरकार के नियंत्रण में रहें।

***अध्यक्षः** यह सुझाव प्रस्तुत किया गया है कि हम सोमवार को समवेत न हों, क्योंकि उस दिन श्रावण पूर्णिमा है। हम पूरा एक दिन नहीं गंवा सकते। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि उस दिन अपराह्न में तीन बजे से सात बजे तक समवेत हो।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार तारीख 5 अगस्त, 1949, के
नौ बजे तक के लिए स्थगित हो गई।